देखी सुनी

वर्ष 2008, अंक 7

प्रिय मित्र,

जागोरी संदर्भ समूह द्वारा प्रकाशित सातवां अंक आप सबसे बांटने को एक बार हम फिर तैयार हैं। 'देखी सुनी' के प्रस्तुत अंक में हम आपके लिए लेकर आये हैं महिला साक्षरता और रोजगार के सिमटते दायरे, बाल व महिला हिंसा, महिला व नागरिक हक और शहरीकरण से संबन्धित खबरें। अंत में जागोरी फिल्मोत्सव : क्रोमोज़ोम की एक झलक भी प्रस्तुत की गई है।

आप सभी के लगातार सुझाव और सराहना हमें हमेशा प्रेरित करते रहे हैं। एक बार फिर हम आशा करते हैं कि इसमें नीहित जानकारी आपके लिए उपयोगी होगी।

जागोरी संदर्भ समूह

पुरुषों को संवेदनशील बनाने की जरूरत

महिलाओं के खिलाफ हिंसा की रोकथाम में पुरुषों का सहयोग लेने और उन्हें संवेदनशील बनाने से यह समाजिक संदेश जाएगा कि पुरुष हमेशा खलनायक नहीं हो सकता। इस पितृसतात्मक सत्ता में उसकी इस नकारात्मक छवि को बदलना एक कठिन काम जरूर है लेकिन असंभव नहीं। इस बदलाव के लिए दुनिया भर में विमर्श जारी है।

अलका आर्य

'राष्ट्रीय महिला आयोग महिला अपराध शाखा के साथ मिलकर पूरे देश में घर परिवार बचाने की एक मुहिम शुरू करने जा रहा है।'

'घर बचाओ, परिवार बचाओ' नामक मुहिम छेड़ने की योजना इस बार किसी चरमपंथी हिंदू संगठन की महिला शाखा की नहीं बल्कि राष्ट्रीय महिला आयोग की है। राष्ट्रीय महिला आयोग मई से महिला अपराध शाखा के साथ मिलकर पूरे देश में घर परिवार बचाने की एक मुहिम शुरू करने जा रहा है। योजना के तहत समाज और पुलिस को संवेदनशील बनाने की कोशिश की जाएगी, जिससे घरेलू हिंसा के मामलों तथा शादी संबंधित अन्य मामलों को सुलझाया जा सके और घर परिवार टूटने से बचाया जा सके। राष्ट्रीय महिला आयोग की अध्यक्ष गिरिजा व्यास का कहना है कि महिलाएं नहीं चाहती हैं कि उनका घर टूटे, पुरुष भी घर तोड़ना नहीं चाहेंगे। ऐसे में आयोग परामर्श के जरिए पति-पत्नी के बीच पैदा गलत-फहमियों, विवादों को सुलझाने की सकारात्मक कोशिश करेगा।

महिलाओं के खिलाफ हिंसा खासकर घरेलू हिंसा के आकड़ों पर एक नजर डालें तो राष्ट्रीय अपराध शाखा के अनुसार वर्ष 2000 में रोजाना औसतन 125 महिलाएं घरेलू हिंसा की शिकार होती थी लेकिन पांच साल बाद यह संख्या 160 तक पहुंच गई। बीते वर्ष जारी राष्ट्रीय स्वास्थ्य सर्वेक्षण-3 के आकड़े भी इसी ओर संकेत करते है। वर्ष 2005-06 में देश में 29 राज्यों में करीब 1.25 लाख महिलाओं से बातचीत करने के बाद पता चला कि 37 प्रतिशत विवाहित महिलाएं पति की शारीरिक व यौन हिंसा की शिकार है। विवाहित महिलाओं के खिलाफ ऐसी हिंसा की घटनाएं बिहार में सबसे ज्यादा दर्ज की गई अर्थात 59 प्रतिशत व उसके बाद राजस्थान (46.5), मध्य प्रदेश (45.8), मणिपुर (43.9), उत्तर प्रदेश (42.4) तमिलनाडु (41.9) व पश्चिम बंगाल (40.3) का नाम है। महिलाओं के खिलाफहिंसा की एक प्रमुख वजह उनका महिला होना है यानी यह एक तरह से लैंगिक हिंसा है। पीड़िता एक महिला है व अपराधी पुरुष। अगर इस लैंगिक हिंसा को खत्म करना है तो पुरुष को महिला के प्रति संवेदनशील बनाना जरूरी है। राष्ट्रीय महिला आयोग भी अपनी 'घर बचाओ परिवार बचाओ' नामक मुहिम में पुरुष को संवेदनशील बनाने की दिशा में काम करेगा। दरअसल बीते कुछ सालों से महिला मुद्दों पर काम करने वालों के बीच यह समझ विकसित हुई है कि अब पुरुषों को उनकी रूढ़ छवि जो अकसर उन्हें आक्रामक, हिंसक के रूप में पेश करती है, से परे देखने की जरूरत है। हाल में यूएनडीपी, यूनिफ्रेम, यूएनएफपीए ने मिलकर एशिया प्रशांत क्षेत्र में लिंग आधारित हिंसा की रोकथाम के लिए लड़कों व पुरुषों के साथ मिलकर काम करने संबंधी एक कार्यक्रम की शुरुआत दिल्ली में की। इस अवसर पर अमेरिका व अफ्रीका में लिंग, हिंसा व पुरुषवाद के मुद्दों पर काम करने वाले एलन ग्रेग ने इस बात पर जोर दिया कि लड़कों व पुरुषों के साथ काम करते वक्त महिला सशक्तिकरण का समर्थन करना बहुत जरूरी है। बेशक यह धारणा कि 'पुरुष स्त्री के खिलाफ हिंसा की रोकथाम का संदेश वाहक हो सकता है' परस्पर विरोधों से भरी पड़ी है पर यह पुरुष की हिंसक, रूढ़िवादी छवि के परे उसके भीतर संभावनाओं को तलाशने में मदद करती है। एलन का यह भी मानना है कि पुरुषों को स्वेच्छापूर्वक अपने अधिकांश विशेषाधिकार त्याग देने चाहिए जो परिवर्तन की राह में, जिसके लिए वे प्रयासरत है, रोड़ा बन जाते है। स्त्रियों की दुनिया से हिंसा खत्म करने के लिए हमें एक अहिंसक पौरुष व अहिंसक पुरुष दोनों की एक साथ जरूरत है। लिंग, हिंसा व पुरुषवाद सरीखे मुद्दों पर काम करने वालों का जोर इस बात पर है कि पुरुष को प्रेरित करने वाली ऐसी कौन सी नीतियां अपनाई जाएं जिससे लिंग आधारित हिंसा को रोका जा सके। पुरुषों को बाल देखभाल का जिम्मा देने वाली प्रैक्टिस पर भी प्रयोग किया गया व सफलता मिली। हाल के अध्ययन दर्शाते हैं कि पुरुष बाल देखभाल में जितना अधिक समय व्यतीत करता है, वह उतना ही कम हिंसक गतिविधियों में शामिल होता है। दरकार ऐसी अच्छी व सफल प्रैक्टिस को नीतियों में बदलने की है। मसलन पितृ अवकाश में वृद्धि, काम-काज के घंटों में लचीलापन, कार्यस्थलों पर शिशु देखभाल केंद्र की स्थापना से बहुत कुछ बदला जा सकता है। और लंबे वक्त के लिए अपनाया जाने वाला नजरिया अधिक लाभदायक सिद्ध हो सकता है। लेकिन अपने देश में लैंगिक हिंसा की रोकथाम में ऐसे नए प्रयोग पर विचार नहीं किया गया है। इसका सबूत छठा वेतन आयोग है। छठा वेतन आयोग की सिफारिशों में कामकाजी माताओं के लिए मातृत्व अवकाश में वृद्धि, बाल देखभाल के लिए कामकाज के घंटे में लचीलापन व 2 साल का शिशु अवकाश जैसी सुविधा शामिल है लेकिन 15 दिन वाले पितृत्व अवकाश में न तो वृद्धि की सिफारिश की गई है व न ही पिताओं के कामकाजी घंटे में छूट की। राष्ट्रीय महिला आयोग को इस पहलू की ओर भी ध्यान देना चाहिए। एक अहम सवाल यह भी है कि राज्य महिलाओं के खिलाफ हिंसा को खत्म करने की दिशा में अपनी भूमिका किस तरह व किस हद तक निभा सकता है? इस संदर्भ में खासतौर पर सचेत रहने की जरूरत भी है कि नीतियों का राजनीतिकरण नहीं होना चाहिए। इसके साथ ही घरेलू हिंसा, पुलिस द्वारा की गई हिंसा व छोटे हथियारों की संख्या में तेजी से बढ़ोतरी जैसे मुद्दों पर भी ध्यान देने की जरूरत है क्योंकि इससे महिला के खिलाफ हिंसा बढ़ती है। अगर स्त्रियों की दुनिया से हिंसा खत्म हो जाती है, तो उसका लाभ पूरी दुनिया को मिलेगा पुरुष वर्ग की इसमें सकारात्मक व एतिहासिक भूमिका हो सकती है।

वैसे एक गैर सरकारी संगठन की मदद से वर्ष 2005 में कर्नाटक की राजधानी, बेंगलुरु, चन्नापेट, व मैसूर वैल्लारी तथा बाद में राजस्थान के जयपुर ग्रामीण, अलवर व कोटा में एक परियोजना के तहत किशोरों व युवकों को महिलाओं के खिलाफ हिंसा सरीखे अपराधों की गंभीरता को समझाया गया। उनकी सक्रिय भागीदारी के उत्साहवर्धक नतीजे भी सामने आए है। इलाके के लोग लैंगिक हिंसा को पहचानने लगे हैं। लैंगिक हिंसा की रोकथाम में पुरुषों का सहयोग लेने और उन्हें संवेदनशील बनाने से यह समाजिक संदेश जाता है कि पुरुष हमेशा खलनायक नहीं हो सकता। इस पितृसतात्मक सत्ता में उसकी इस नकारात्मक छवि को बदलना एक कठिन काम जरूर है लेकिन असंभव नहीं। इस बदलाव के लिए दुनिया भर में विमर्श जारी है।

(लेखिका स्वतंत्र पत्रकार हैं)

देश में महिला साक्षरता

भारत में महिलाएं हर मोर्चे पर सफलता के झंडे गाड़ रही हैं। लेकिन ताजा आंकड़ों के अनुसार देश में लाखों शिक्षण संस्थानों के खुलने के बावजूद केवल 54.16 फीसद महिलाएं ही शिक्षित हैं।

राज्य	प्रतिशत	राज्य	प्रतिशत
आंध्र प्रदेश	51.17	नगालैंड	61.92
अरुणाचल प्रदेश	44.21	उड़ीसा	50.97
असम	56.03	पंजाब	63.55
बिहार	33.57	राजस्थान	44.34
छत्तीसगढ़	52.40	सिक्किम	61.46
दिल्ली	75.00	तमिलनाडु	64.55
गोवा	75.51	त्रिपुरा	65.41
गुजरात	58.60	उत्तरप्रदेश	42.98
हरियाणा	56.31	उत्तराखंड	60.36
हिमाचल प्रदेश	68.08	पश्चिम बंगाल	60.22
जम्मू-कश्मीर	41.82	**संघ शासित क्षेत्र**	
झारखंड	39.38	अंडमान एवं निकोबार	75.29
कर्नाटक	57.45	चंडीगढ़	76.65
केरल	87.86	दादर व नगर हवेली	42.99
मध्य प्रदेश	50.28	दमन व दीव	70.37
महाराष्ट्र	67.51	लक्षद्वीप	81.56
मणिपुर	59.70	पुडुचेरी	74.16
मेघालय	60.41	**राष्ट्रीय औसत**	**54.16**
मिजोरम	86.13		

स्रोत: जनगणना 2001 भारत सरकार

बच्चे पालने का काम क्या सिर्फ मां का है?

आधी दुनिया

अलका आर्य

काम और घर की दोहरी जिम्मेदारियों के मद्देनजर वेतन आयोग ने महिला कर्मचारियों के मातृत्व अवकाश की अवधि तीन महीने से बढ़ाकर छह महीने करने व बच्चों की देखभाल के लिए उनके काम के घंटों में लचीलापन लाने की सिफारिश की है। जस्टिस श्रीकृष्ण आयोग ने यह भी सुझाव दिया है कि शिशुओं की कामकाजी माताओं को उचित बाल-देखभाल के मकसद से दो साल (730 दिन) का अवकाश भी दिया जा सकता है व जरूरत पड़ने पर यह अवकाश तीसरे साल भी दिया जाना चाहिए। महिला कर्मियों के प्रति विशेष उदारता बरतते हुए छठे वेतन आयोग ने मातृत्व अवकाश में वृद्धि व काम के घंटों में सुविधानुसार छूट देने की सिफारिश इसलिए की है, ताकि कामकाजी महिला कार्यक्षेत्र व परिवार, दोनों के प्रति अपनी जिम्मेदारियों का सही निर्वाह कर सके।

आयोग की महिला कर्मियों के प्रति बरती गई इस उदारता से संदेश जाता है कि कामकाजी औरत दोहरे बोझ से आजाद नहीं हो सकती। उसे दोहरे बोझ के खूंटे से बांधे रखने के लिए इन सिफारिशों से समाज में लिंग आधारित विभाजन को मजबूती मिलेगी। हालांकि छठे वेतन आयोग में मातृत्व अवकाश- में वृद्धि की सिफारिश स्वागत योग्य है, क्योंकि यह शिशु व मां, दोनों के स्वास्थ्य के लिए बहुत जरूरी है, पर बच्चों की देखभाल के लिए दो साल के अवकाश व काम के लचीले घंटों सरीखी सिफारिशों ने नारीवादियों की उस पुरानी बहस को फिर से जीवित कर दिया है कि परिवार और बच्चों की देखभाल की जिम्मेदारी में मां व पिता दोनों की बराबर भूमिका होनी चाहिए। इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता कि शिशु को जन्म से दो-तीन साल तक माता-पिता दोनों की जरूरत होती है। स्तनपान केवल मां ही करा सकती है व छह महीने के स्तनपान के बाद शिशु ऊपरी आहार भी ले सकता है। ऐसे में शिशु की देखभाल का काम पिता भी बखूबी कर सकता है। लेकिन सामाजिक मानसिकता मां पर ही सारा बोझ डालने की है। इसकी पृष्ठभूमि में यह मान्यता काम करती है कि स्त्रियां मां की भूमिका में ज्यादा उपयोगी हैं। खेदजनक पहलू यह है कि सरकारी सिफारिशों व सरकारी नीतियों में भी लिंगभेद की इस तरह की मानसिकता का असर साफ दिखाई देता है।

आयोग ने सिफारिश की है कि कार्य संस्कृति का माहौल बनाने के लिए दो साल के बच्चों की कामकाजी माताओं को उनकी सुविधानुसार काम के घंटे में छूट मिलनी चाहिए। यानी परिवार, शिशु की देखभाल में कोई कमी न रह जाए, इसके लिए कामकाजी औरत डेढ़ घंटे देर से दफ्तर आ सकती है या छुट्टी के समय के दो घंटे पहले घर जा सकती है। लेकिन इस लचीलेपन के साथ यह हिदायत भी दी गई है कि 11 से चार बजे तक के घंटों के दौरान वह औरत सिर्फ काम ही करेगी। इस सरकारी उदारता की कीमत आखिर महिला को ही घर व दफ्तर में लगातार काम करके चुकानी होगी। पति लचीले घंटों की सुविधा का लाभ उठाने के लिए पत्नी पर घर में रहकर बच्चों की देखभाल का दबाव बनाएगा व दफ्तर में भी उसे बिना आराम किए काम करना होगा। उसे निर्धारित लक्ष्य के लिए बाकी घंटों में अपनी सेहत की अनदेखी करनी होगी। जस्टिस श्रीकृष्ण आयोग ने महिला कर्मचारियों की बढ़ती संख्या को ध्यान में रखते हुए पारिवारिक ढांचे में औरत की स्थिति को यथावत बनाए रखने के उद्देश्य से महिलाओं को बच्चों की देखभाल के लिए दो साल का अवकाश देने का भी सुझाव दिया है। आयोग ने यह भी कहा है कि कामकाजी महिला दो वर्ष के अवकाश का इस्तेमाल अपने शिशु को बड़ा करने मे अथवा उसकी परीक्षा व बीमारी के लिए भी कर सकती है। श्रम विभाजन में लिंगगत भूमिका औरत के लिए खास मान्यता रखती है। क्योंकि अभी तक पुरुष वर्चस्व वाले समाज ने श्रम विभाजन के मुद्दे पर उसे छला है। उसके श्रम को कमतर आंकने की प्रवृत्ति आज भी रुकी नहीं है।

बेहतर यह होता कि आयोग लचीले घंटे व बाल देखभाल अवकाश की सिफारिशें माताओं के साथ-साथ पिताओं के लिए भी करता। बाल विकास में माता-पिता, दोनों की बराबर भूमिका है। पिता भी इस भूमिका को ईमानदारी से निभाएं, इसके लिए सरकारी नीतियों को सार्थक पहल करनी होगी। हकीकत यह है कि जिस तादाद मे कार्यक्षेत्र में महिलाओं की मेहनत व काम के घंटे बढ़ रहे हैं, उस अनुपात में घरों मे पुरुष महिलाओं के घरेलू काम में हाथ नहीं बंटा रहे। काम का दोहरा बोझ महिलाओं की ऊर्जा सोख लेता है। निहित स्वार्थों के लिए समाज में गढ़ी गई आदर्श पत्नी, आदर्श मां की छवि पर दफ्तर में पति/पिता के बराबर काम करने के बावजूद कोई खरोंच नहीं लगनी चाहिए वाली नीति सरकारी नीतियों मे भी दिखाई पड़ती है। छठे वेतन आयोग की मातृत्व अवकाश को छोड़कर बाकी सिफारिशें भी इसी श्रेणी में आती है।

(लेखिका स्वतंत्र पत्रकार है)

बस और आटो की कमान भी थामी महिलाओं ने

गुजरात में महिलाओं ने कायम की अलग मिसाल।

हेतल पटेल. राजकोट / सूरत

सौराष्ट्र व दक्षिण गुजरात में बस कंडक्टर एवं आटो रिक्शा चालक बनने वाली महिलाओं ने एक अलग मिसाल कायम की है। सार्वजनिक परिवहन में भागीदारी कर वे अपनी आजीविका खुद कमा रही है।

सोने पर सुहागा

सौराष्ट्र मुख्यालय राजकोट में छह माह पहले शहरी बस सेवा शुरू हुई है। इसमें चार महिला कंडक्टर हैं और सभी विवाहित हैं। उन्होंने बताया कि शादी का अर्थ चार दीवारी में कैद हो जाना नहीं है, बल्कि आगे बढ़ कर जिम्मेदारी लेना होता है। इस पर परिजनों का सहयोग मिल जाए तो सोने पर सुहागा हो जाता है। महिला कंडक्टर सोनल मेहता इस बारे में स्वयं को भाग्यशाली मानती हैं। सोनल ने कहा कि मुझे मेरे जेठ ने प्रोत्साहित किया था। वहीं, कंडक्टर मधुबहन ने बताया कि नया काम करने के लिए साहस की जरूरत पड़ती है, साहस के आते ही सब कुछ सरल हो जाता है।

जब चलेगा मेरा रिक्शा

उधर, डायमंड सिटी सूरत में कई महिलाओं ने घर की चार दीवारी लांघ कर आटो रिक्शे की कमान थाम ली है। खास बात यह है कि ये महिलाएं मुस्लिम हैं। इन्हें गरिमा नामक स्वैच्छिक संगठन प्रशिक्षण दे रहा है।

अंग्रेज तो चले गए लेकिन गुलाम यहीं छोड़ गए। ये गुलाम दिखाई तो नहीं देते हैं, लेकिन घरों में इनकी गुलामी अभी भी जारी है। आज भी कई घरों की जिम्मेदारी कामवाली बाइयों के ही कंधों पर होती है। ये बाइयां न आए तो घर का काम ही अटक जाए। कामवाली बाइयां बहुत उपयोगी हैं, लेकिन इनके बारे में आप सरकार कितना सोचते हैं? एक रिपोर्ट-

इन्हें भी चाहिए अधिकार

1 20 वर्षीय सुनीति दिल्ली में एक घर में काम करती है। कुछ महीने पहले घर के ही एक सदस्य ने उसके साथ बलात्कार किया। घर के अन्य सदस्यों ने उसे पुलिस के पास जाने से रोक दिया। जब वह प्रेगनेंट हो गई तो उसे 50 हजार रुपए देकर उसके गांव भेज दिया गया।

2 10 साल की राजी को उसकी मालकिन रोजाना मारती-पीटती है। छोटी से छोटी गलतियों पर उसे बुरी तरह से पीटा जाता है। एक बार कांच का गुलदस्ता टूट जाने पर उसे चम्मच से इतनी जोर से मारा कि उसका एक दांत ही टूट गया।

सुमन भास्कर. भोपाल

घर में काम करने वाले नौकर/नौकरानियों को अकसर इस तरह की समस्या से रूबरू होना पड़ता है। नौकरों के यौन शोषण के कई मामले भी सामने आए हैं। इसके अलावा बिना छुट्टी के काम करना, खाना नहीं मिलना, रहने की कोई व्यवस्था नहीं होना, वेतन समय पर नहीं मिलना, कुछ भी गलती होने पर वेतन काट लेना, बिना कोई कारण बताए नौकरी से निकाल देना, झूठे चोरी के आरोप लगाना आदि समस्याएं भी प्रमुख हैं। शहरों में घरेलू काम रोजगार का बहुत बड़ा क्षेत्र है। प्रवासी कामगारों के लिए काम करने वाले एक एनजीओ निर्मला निकेतन के अनुसार झारखंड, उड़ीसा और पश्चिम बंगाल से लाई गई एक लाख आदिवासी लड़कियां अकेले दिल्ली में काम कर रही हैं।

ये हैं मुख्य मांगें-

- घरेलू कार्यों को भी अन्य कार्यों की तरह महत्व दिया जाए।
- सामाजिक सुरक्षा योजना जैसे पेंशन, मेडिकल फायदे, मेटरनिटी से जुड़े तमाम फायदे आदि भी दिए जाएं।
- इस व्यवसाय के लिए न्यूनतम वेतन तय किए जाएं।
- सरकार राज्य कल्याण मंडल का गठन करके घरेलू नौकरों का पंजीयन करवाएं और उन्हें सामाजिक सुरक्षा योजना दिलाई जाएं।
- कल्याण मंडल का गठन जिला स्तर पर किया जाए, जो घरेलू नौकरों से जुड़े मामलों की सुनवाई करवाए और पीड़ितों को राहत दिलवाए।
- घर में बच्चों के काम करने पर प्रभावी रूप से रोक लगाई जाए।

क्या है घरेलू कामगार बिल 2008

इस बिल के तहत घरों में काम करने वाले कामगारों को उनके रोजगार के नियमितीकरण, काम करने की स्थितियों के साथ ही सामाजिक सुरक्षा और कल्याण की मांग की गई है। नेशनल कैम्पेन कम्युनिकेशन अनरिकॉगनाइज्ड सेक्टर वर्कर्स (एनसीसीयूएसडब्ल्यू) और निर्मला निकेतन ने मिलकर राष्ट्रीय महिला आयोग के अधीन इस विधेयक का मसौदा तैयार किया है। यदि यह घरेलू कामगार बिल पास हो जाता है तो कामगारों के अधिकारों और उनकी सुरक्षा की दिशा में एक सशक्त कदम होगा।

क्या है बिल में

- एक साल में कम से कम एक बार महीने की सैलेरी दीपावली के बोनस के तौर पर इन कामगारों को दी जाए।
- एम्प्लॉयर द्वारा कामगारों के मेडिकल बेनेफिट में सहयोग दिया जाए।
- हर साल में एक बार सैलेरी में इनक्रीमेंट दिया जाए।
- घर में ही रहकर काम करने वाली नौकरानियों को उनके घर जाने के लिए छुट्टी और 15 दिन की सैलेरी दे दी जाए।
- एक मई 2000 को पुणे के सहकार मोलकारिन संगठन ने घरेलू काम के लिए एक पे-स्ट्रक्चर तैयार किया है, जिसके अनुसार, **रुपए प्रतिमाह**
- एक व्यक्ति के कपड़े और बर्तन धोने का 100
- एक कमरे की साफ-सफाई 60
- खाना बनाना (चार व्यक्तियों के लिए) 800
- दीपावली का बोनस एक माह की सैलेरी
- महीने में वीकली ऑफ चार
- एक साल में छुट्टियां 20 विशेष अवकाश
- मेहमानों के आने, दीपावली की साफ-सफाई, सब्जियां काटने, बाथरूम की सफाई व अन्य कामों के लिए अलग से धन।
- जब एम्प्लॉयर उन्हें सेवा से निकाले तो उसे ग्रेजुएटी भी दी जाए।

क्या है बाल श्रम की स्थिति

इंटरनेशनल लेबर ऑर्गनाइजेशन (आईएलओ) के अनुसार दुनियाभर में पांच से लेकर 15 वर्ष की आयुवर्ग के 24.5 करोड़ बच्चे बाल श्रमिक हैं। आईएलओ के अनुसार हर 10 में से सात बच्चे कृषि क्षेत्र में काम करते हैं। इसके अलावा सर्विस बिजनेस में 22 प्रतिशत और इंडस्ट्री में काम करने वाले बच्चों की संख्या नौ प्रतिशत है। एशिया पैसेफिक में सबसे ज्यादा 12.2 करोड़ बाल श्रमिक हैं, जबकि उप सहारा अफ्रीका में 4.9 करोड़ बाल श्रमिक हैं। भारत में सरकार ने खुद ही यह स्वीकार किया है कि देश मे 14 साल से कम उम्र के करीब 1.26 करोड़ बाल श्रमिक हैं। एनजीओ की मानें तो देश में घरेलू कामों और सड़क किनारे काम करने वाले बच्चों की संख्या बीस लाख से अधिक है। दिल्ली स्थित एक एनजीओ सेंटर ऑफ कन्सर्न फॉर चाइल्ड लेबर के अनुसार सात करोड़ बच्चे स्कूल जाने की उम्र में बाल श्रम करते हैं और उनकी स्कूली शिक्षा पूरी नहीं हो पाती है।

ऐसे होगी सामाजिक सुरक्षा

इस बिल का सबसे अहम प्रस्ताव एक त्रिसदस्यीय बोर्ड के गठन का है। इसमें घरेलू कामगारों के प्रतिनिधि, उनके एम्प्लॉयर और सरकार शामिल होगी। सभी घरेलू कामगारों, उनके एम्प्लॉयर्स और प्लेसमेंट एजेंसियों का रजिस्ट्रेशन इस बोर्ड के द्वारा किया जाएगा। रजिस्ट्रेशन फीस के तौर पर जो राशि ली जाएगी, उसे कामगारों की सोशल सिक्युरिटी पर खर्च किया जाएगा। यह बोर्ड काम करने की स्थितियों के साथ ही घरेलू कामगारों का पूरा रिकॉर्ड तैयार करेगा। इसके अलावा कामगारों की सेहत से जुड़े मुद्दों और उनके लिए रहने की व्यवस्था की जिम्मेदारी भी बोर्ड की ही होगी। बोर्ड इनके बैंक अकाउंट भी खुलवाएगा।

बात पगार की

न्यूनतम वेतन एक्ट 1948 के तहत जिस किसी भी प्रोफेशन में 1000 से ज्यादा लोग काम करते हैं, उनके लिए न्यूनतम वेतन निर्धारित किया जा सकता है। इसके बावजूद आज लाखों लोग घरेलू काम करते हैं, लेकिन उनके लिए कोई वेतन निर्धारित नहीं किया गया है। 1957 को हुई 15वीं इंडियन लेबर कॉन्फ्रेंस में कहा गया था कि घरेलू कामगारों को इतना वेतन दिया जाना चाहिए, जिससे उनकी मूलभूत जरूरतें पूरी की जा सकें। इनमें खाना, कपड़े, घर और अन्य जरूरतें शामिल हैं। घरों में काम करने वाली ज्यादातर बाइयां कुपोषण की शिकार हैं। एक वयस्क को कम से कम एक दिन में 2700 कैलोरी लेना चाहिए, लेकिन ऐसा हो नहीं पाता है। कुल वेतन का 20 प्रतिशत हिस्सा लाइटिंग, तेल आदि जरूरतों पर खर्च हो जाता है।

खो देती हैं पहचान

आदिवासी महिलाएं अपने राज्य से दूसरे राज्य में आने के दौरान अपनी पहचान तक खो देती हैं। कई बार उनके नाम भी परिवर्तित रहते हैं। बोर्ड को यह निश्चित करना होगा कि सभी कामगारों का पूरा रिकॉर्ड उनके पास रहे।

-सुभाष भटनागर, को-ऑर्डिनेटर, एनसीसीयूएसडब्ल्यू

ब्रिटेन में कार्यस्थलों पर भेदभाव

महिलाओं को चुकानी पड़ती है मां बनने की कीमत

एजेंसी

लंदन। ब्रिटेन भले ही दुनिया भर में मानवाधिकार और महिलाओं की समस्या को लेकर हायतौबा मचाता है लेकिन आपको जानकर हैरानी होगी कि अंग्रेजों के इस देश में हर साल तकरीबन 30,000 महिलाओं को मां बनने की कीमत चुकानी पड़ती है। वह भी अपनी आजीविका यानी नौकरी खोकर। ब्रिटेन में हाल ही में किए गए अध्ययन से इसकी पुष्टि हुई है। पश्चिमी यॉर्कशायर के ओसट शहर की पुलिस अधिकारी जेनेट लुंडी को ही ले लीजिए। गर्भवती होते ही जबरदस्ती मेडिकल आधार पर उन्हें सेवानिवृत्ति दे दी गई। पर वह विचलित नहीं हुईं और न ही उन्होंने हार मानी। उन्होंने अपने साथ हुए इस लिंग भेदभाव को लेकर मुकदमा लड़ा और जीत भी हासिल की। इस तरह उन्होंने दूसरी गर्भवती और संभावित गर्भवती स्त्रियों के लिए एक मिसाल कायम की।

ब्रिटेन की फॉसेट सोसायटी द्वारा लैंगिक भेदभाव विषय पर कराए गए एक अध्ययन में कहा गया कि देश में पिछले एक साल के दौरान करीब 30,000 महिलाओं को उनके गर्भवती होने का खामियाजा भुगतना पड़ा अर्थात उन्हें मां बनने की कीमत अदा करनी पड़ी। सोसाइटी की रिपोर्ट के अनुसार गर्भवती और नई मां बनने वाली महिलाओं के साथ उनके कार्य स्थल पर लिंग भेदभाव किया जाता है। उस दौरान उन्हें हल्के और सरल कार्यों की जरूरत होती है लेकिन उनकी इन आवश्यकताओं को नजरअंदाज किया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि अपने बच्चों की जरूरतों को पूरा करने के लिए महिलाएं अपने कैरियर के साथ समझौते करने के लिए बाध्य हो जाती हैं। सोसाइटी का कहना है कि उसके द्वारा कराए गए शोध में महिलाओं के साथ कार्यस्थल पर लिंगभेद बरतने के बहुत बड़े आंकड़े सामने आए हैं। सोसायटी ने महिलाओं को इन भेदभावों के खिलाफ आवाज उठाने का आह्वान किया है। सोसायटी ने ब्रिटिश ओलंपिक मंत्री टेसा जावेल के हवाले से कहा है कि कार्यस्थल पर महिलाओं को कई लाभों से वंचित होना पड़ता है। जो फुलटाइम जॉब करती हैं ऐसी महिलाओं को भी पुरुषों के मुकाबले 17 फीसदी कम वेतन दिया जाता है। उनके अनुसार दो तिहाई महिलाओं को कम वेतन पर नौकरी दी जाती है। सोसायटी के अनुसार पुरुष प्रधान लंदन में महिलाओं को पुरुषों के समान अवसर प्रदान नहीं किए जाते। हर स्तर पर महिलाओं के साथ भेदभाव किया जाता है। सोसायटी के अनुसार क्लाइंट को एंटरटेन करने के लिए देश में सेक्स बार खेले जा रहे हैं।

यहां भी कम नहीं दर्द

- **68 प्रतिशत ग्रेजुएट महिलाएं नौकरी नहीं करती**
- **कुल महिला श्रम का 35.4 फीसदी कृषि मजदूर**
- **सिर्फ 5.2 फीसदी महिलाएं ही भारत में नौकरी पेशा**

- **पुरुषों के मुकाबले महिलाओं के वेतन में 27.6 फीसदी का अंतर**

अहंकार के रिश्ते

केपी सिंह

समाज

मनोज-बबली प्रकरण अभी शांत भी नहीं हुआ था कि हरियाणा में ही बल्ला गांव में जसबीर-सुनीता को कथित सामाजिक सम्मान की खातिर जान से हाथ धोना पड़ा। हरियाणा और उत्तर भारत के कई राज्यों के ग्रामीण इलाकों में सम्मान की दलील देकर अपनी संतान को मौत के घाट उतार देना कोई नई बात नहीं है। धर्म, जाति, कबीले, गांव और गोत्र की लक्ष्मण रेखाएं लांघ कर शादी के बंधन में बंधने वाले युवक-युवतियों को जीने का कोई अधिकार नही है- 'सम्मान-बध' की समर्थक सामाजिक व्यवस्था का यही फरमान है।

मानवाधिकारों के सार्वभौमिक घोषणा-पत्र में अपनी मर्जी से जीवन-साथी चुनने के अधिकार का प्रमुख मानवाधिकार के रूप में उल्लेख किया गया है। सभी धर्मों के विधि-विधानों में शादी करने वाले जोड़े की आपसी सहमति को प्रत्यक्ष या प्रतीकात्मक तरीके से प्रदर्शित करने की प्रथा है। पर यह सहमति तब तक पूर्ण नहीं मानी जाती जब तक उस पर सामाजिक सहमति की मुहर नहीं लग जाती। धर्म, विवाह या उत्तराधिकार जैसे व्यक्तिगत मसलों को तय करने के लिए प्रत्येक धर्म के अलग-अलग व्यक्तिगत कानून हैं। इन कानूनों में सामाजिक रीति-रिवाजों और प्रथाओं को कानून के बराबर की मान्यता दी गई है।

देशकाल और परिस्थितियों के अनुरूप समाज रीति-रिवाज और प्रथाएं तय करता है। इसी आधार पर विवाह के मामलों में सामाजिक पंचायतें दखल देती रहती हैं। भारत के संविधान में लोगों के व्यक्तिगत और धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप न करने के सिद्धांत को सर्वोपरि मान कर लोगों को धार्मिक और सांस्कृतिक स्वतंत्रता का अधिकार दिया गया है। लेकिन जीने के अधिकार को सर्वोच्च मौलिक अधिकार माना गया है।

सवाल है कि सामाजिक रीति-रिवाजों और परंपराओं के विरुद्ध व्यक्तिगत आचरण करने वाले लोगों के जीने के अधिकार पर क्या किसी का पहरा हो सकता है? कानून विवाह को व्यक्ति का निजी मामला मानता है जबकि व्यक्तिगत कानूनों में विवाह को परिवार के सम्मान और अस्मिता के प्रतीक के रूप में एक संस्कार या करार की मान्यता दी गई है। व्यक्तिगत कानूनों में यह प्रावधान नहीं है कि इन कानूनों की अवहेलना करने वालों को क्या सजा दी जा सकती है। फिर सामाजिक रीति-रिवाजों के विरुद्ध विवाह करने वालों को मृत्युदंड जैसी सजा देने की प्रथा समाज में कैसे स्थापित हुई? अगर किसी धर्म और समाज से संबद्ध व्यक्ति उसके कायदे-कानूनों के विरुद्ध जाकर आचरण करता है तो अधिक से अधिक वह धर्म या समाज अपने अनुयायियों को उस व्यक्ति से सामाजिक संबंध विच्छेद करने की अपील कर सकता है। देश का संविधान और कानून सामाजिक और धार्मिक पंचायतों के फैसलों को मान्यता नहीं देता है।

'सम्मान-बध' से जुड़ी मानसिकता को समाजशास्त्र की अवधारणाओं की कसौटी पर भी परखने की जरूरत है। प्रगति की दौड़ में पिछड़ गए लोगों द्वारा समूह, समुदाय और संप्रदाय के माध्यम से अपने अस्तित्व को ढूंढने और स्थापित रखने की कोशिश एक सामान्य घटना है। शताब्दियों पुराने सामाजिक ढांचे को सपने की तरह आंखों में बसा कर इस प्रकार के समूह स्वयं को झूठी दिलासा देने की कोशिश करते हैं कि उनकी विरासत और परंपराएं अक्षुण्ण हैं। ग्रामीण इलाकों की आबादी का ज्यादातर हिस्सा इसी प्रकार के हताश और निराश लोगों का है।

समूहों की सामाजिक सत्ता का लोक-मंचन दरअसल समूहों की अस्तित्व रक्षा के संघर्ष के रूप में देखा जाना चाहिए। व्यवस्था की ओर से कोशिश इस बात की होनी चाहिए कि इस प्रकार के समूहों को प्रगतिशील सोच देकर उन्हें यह अहसास कराया जाए कि अपना अस्तित्व व्यक्तिगत प्रगति में ढूंढने की जरूरत है, न कि समूह की भेड़चाल में।

इसलिए प्रेमी जोड़ों को मौत का फरमान सुनाने वाली पंचायतें, पारिवारिक सदस्य और इस निर्णय में शामिल सभी व्यक्ति हत्या के अपराध के दोषी हैं। विडंबना यह है कि इस प्रकार के हत्यारों को सजा देने के लिए कानून असहाय नजर आता है। सजा देने के लिए कानून को गवाहों की बैसाखी चाहिए। ऐसे मामलों में गवाह तो क्या मुद्दई भी नहीं मिलते। अगर कोई मिल भी जाता है तो अदालत तक जाते-जाते वह मुकर जाता है। किसी तरह कोशिश करके पुलिस मुकदमा बनाती भी है तो उसे कामयाबी हाथ नहीं लगती। मुलजिमों को बचाने के लिए सार्वजनिक पंचायतें होती हैं, कानून और व्यवस्था की जिम्मेदार एजेंसियां मूकदर्शक बनी रहती हैं।

कानून दोषियों को सजा देने का माध्यम ही नहीं, समाज को नई दिशा और सोच देने का जरिया भी है। कानून लागू करने वालों को इक्कीसवीं शताब्दी में मध्यकालीन सामाजिक परंपराओं को पनपने से रोकने की हर संभव कोशिश करनी चाहिए। यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि सामाजिक पंचायतें अदालत के एक सम्मन तक की अवहेलना करने की कुव्वत नहीं रखती। प्रगति की दौड़ में हरियाणा सबसे आगे गिने जाने वाले राज्यों में से एक है। मगर जसबीर-सुनीता जैसे प्रकरण प्रदेश के माथे पर कलंक हैं। इस कलंक को मिटाने की पहली जिम्मेदारी किसी और की नहीं, हरियाणा के समाज की ही है।

अब चेहरे पर है मुस्कान

पंजाब के मोगा जिले की अदालत ने 10 मई को अहम फैसला सुनाते हुए एक ही परिवार के तीन सदस्यों को 10-10 साल की सजा सुनाई। इन तीनों पर योजनाबद्ध तरीके से जबरदस्ती गर्भपात कराने का आरोप था। आरोपियों को सजा तो हो गई, लेकिन पीछे छूट गई मुस्कान जिसका जबरन गर्भपात कराया गया। अपने दोषियों को सजा दिलाने के बाद मुस्कान अब खुश है।

मनीषा भल्ला. सुल्तानपुरलोधी

मुस्कान के पास कुछ बचा है तो सिर्फ यादें। अपने मरे हुए बच्चे और उन तकलीफों की जो उसके ससुरालवाले उसे दिया करते थे। उन हालातों ने मुस्कान को बेशक रुलाया और सताया, लेकिन इतना मजबूत भी बना दिया कि उसने अपने बच्चे के कातिलों से बदला लेने की ठान ली। मुस्कान को इस बात की खुशी है कि दर्द के दरिया को पार कर वह उन लोगों को सजा दिलवाने में कामयाब रही, जिन्होंने कोख में उसके बच्चे की हत्या कर दी।

सुल्तानपुरलोधी से 12 किलोमीटर की दूरी पर है गांव कबीरपुर। यहां की संकरी गलियों के बीच दो कमरों के मकान में मुस्कान अपने मायके घर में रह रही है। मुस्कान बताती है कि सितंबर वर्ष 2002 में उसकी शादी गांव कोट ईसे खां (मोगा) के रहने वाले सुरिंदर कुमार (गोल्डी) से हुई। गांव में ही उसकी पंसारी की दुकान थी। वह बताती है कि 'शादी के एकदम बाद से सुरिंदर ने मुझे मारना शुरू कर दिया...सास और बड़ी ननद भी मारती...कोई बात हो बस चलते-फिरते थप्पड़ मार देते।' मुस्कान के अनुसार सुबह पांच बजे उठने के बाद उसे देर रात तक बैठने तक की इजाजत नहीं थी। बदले में मुस्कान को मिलती सिर्फ एक वक्त की रोटी और मार-गालियां। मुस्कान का भाई नवजोत सिंह कहता है कि 'रुपए की मांग करके दो बार मुस्कान को घर से निकाला दिया गया। वह फटेहाल में हमारे पास आई, एक बार ब्याज पर 50,000 और दूसरी बार 25,000 लेकर गांव के सरपंच के साथ हम 5-6 लोग उसे उसके ससुराल छोड़कर आए और उनसे माफी भी मांगी।'

जब उम्मीद से थी

वर्ष 2003 में जब मुस्कान पहली बार प्रेगनेंट हुई तो उसे लगा कि बच्चा होने से शायद अब हालात सुधर जाएंगे, लेकिन वह अपने पति और सास के इरादों से वाकिफ नहीं थी। वह बताती है कि 'एक दिन मुझे जबरदस्ती दवाई दिलवाने के बहाने डॉक्टर के यहां ले गए और अल्ट्रासाउंड टेस्ट करवा दिया..मुझे घर आकर कहा कि डॉक्टर ने कहा है कि बच्चा सही नहीं।' मुस्कान के अनुसार एक-दो दिन के बाद उसकी सास ने उससे कहा कि 'तुम्हें ताकत की दवाएं दिलवानी है, जिसके लिए कुछ दिन वागेपुराना सुनीता के घर रहना होगा।' सुनीता मुस्कान की सास शिमला रानी की दूर की बहन है और दाई का काम करती है। वहां जाकर उसे पता चला कि उसके ससुराल वाले उसके बच्चे को मार देना चाहते हैं। इस पर मुस्कान ने हो-हल्ला मचाया, लेकिन उसे खूब-मारा पीटा गया।

सात दिनों की प्रताड़ना

वह बताती है कि 'सुरिंदर और सास ने जबरदस्ती मेरे दोनों हाथ पकड़े और सुनीता रानी ने मेरे अंदर दवा रख दी।' कुछ घंटो बाद मुस्कान दर्द से चिल्लाने लगी। वह बताती है कि 'सारा गांव जानता है कि मैं किस तरह से चीख रही थी।' मुस्कान को एक कमरे में बंद रखा जाता। लगातार सात दिन तक उसके अंदर दवाई रखी गई। इस बीच उसकी सास, पति और देवर कोट ईसे-खां आ गए थे। एक दिन सुनीता रानी किसी काम से बाहर गई तो मुस्कान ने अपने भाई नवजोत को फोन कर सारी बात बता दी। फौरन उसका भाई कुछ गांववासियों सहित गाड़ी करके कोर्ट ईसे-खां पहुंच गया और वहां से वागा पुराना। उसने देखा कि मुस्कान दर्द से तड़प रही है। वह उसे वहीं के निजी अस्पताल ले गया। जहां जाकर पता लगा कि मुस्कान के अंदर जहर फैल गया है और गर्भ में ही उसके बच्चे की मौत हो चुकी है। ऑपरेशन कर किसी तरह उसके अंदर से मरा हुआ बच्चा निकाला गया।

कैसे छोड़ दू...?

वह बताती है कि 'मैंने अपना मरा हुआ बच्चा देखा था, वह बेटा था। 15 दिन तक अस्पताल में रहने के बाद मेरा भाई मुझे कबीरपुर ले आया और फिर मैं अपने ससुराल कभी नहीं गई।' मुस्कान का कहना है कि 'मैंने सोचा कि उनके कारण मेरा बच्चा मर गया... मुझे उन्होंने दिन-रात मारा... मेरे पिता बीमार हो गए... हमारी जमीन बिक गई... भाई कर्ज को बोझ तले दब गए... आखिर मैं उन लोगों को बिना सजा दिलवाए छोड़ कैसे सकती हूं।'

हिंसा के बाद... थमती नहीं आह

वुमन भास्कर. नेटवर्क

गुजरात दंगे हो या नंदीग्राम में आए दिन हो रही हिंसा की वारदातें या फिर अतीत के पन्नों में दर्ज जलियावाला बाग हत्याकांड... हर जगह बस एक ही समानता नजर आती है और वो है इस हिंसा के बाद उपजे आक्रोश का शिकार हुई महिलाएं और मासूम बच्चे।

पुरुष प्रधान समाज और महिलाएं

पुरुष प्रधान समाज में महिलाओं की स्थिति शुरू से ही कुछ खास अच्छी नहीं रही है। सदियों से महिलाएं अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रही हैं। इसके बाद भी उन्हें इतने अधिकार नहीं दिए गए हैं कि वे उनसे आगे जा सकें। 21वीं सदी में प्रवेश करने के बाद भी महिलाओं की स्थिति को बहुत अच्छा नहीं कहा जा सकता है। आज भी कहीं भी हिंसा हो तो उसकी परिणति महिलाओं के खिलाफ बढ़ते अपराध के रूप में सामने आती है।

गुजरात दंगों की एक तस्वीर यह भी

गुजरात दंगों की शुरुआत हुई गोधरा में साबरमती एक्सप्रेस में आग लगाने की घटना से। इस घटना से भड़के लोगों ने पूरे गुजरात को अपनी चपेट में ले लिया। जगह-जगह दंगे भड़कने लगे। इसकी सीधी शिकार बनीं महिलाएं और मासूम बच्चे, जो बिना किसी कसूर के इन दंगों की आग में झुलस गए। कई महिलाओं से बलात्कार और फिर उनकी हत्या जैसी घटनाएं हुईं जो गोधरा कांड के किस्से के बीच कहीं दबकर रह गईं।

जालियावाला बाग हिंसा

आजादी के संघर्ष वाले दौर में हुए जालियावाला बाग हत्याकांड को कौन भुला सकता है। आज भी उस हत्याकांड की वीभत्सता लोगों के दिल में वही सिहरन, वही आतंक पैदा कर देती है। इस हत्याकांड में कई निर्दोष महिलाओं और बच्चों को अपनी जान गंवाना पड़ी।

भारत-पाक बंटवारा

भारत और पाकिस्तान दोनों के बाशिंदों के लिए बंटवारे की त्रासदी को नजरअंदाज कर पाना मुमकिन नहीं है। बंटवारे की उस आग में अभी तक कई लोग झुलस रहे हैं। बंटवारे के वक्त भी जबर्दस्त हिंसा हुई थी। उस समय भी कई महिलाओं और बच्चों को अत्याचार का शिकार होना पड़ा था।

...और फिर नंदीग्राम

पश्चिम बंगाल के नंदीग्राम को एसईजेड (स्पेशल इकोनॉमिक जोन) के रूप में विकसित करने की तैयारी चल रही है। एक तरफ सरकार इस डील को विकास के मुद्दे से जोड़कर पेश कर रही है, तो दूसरी तरफ इसका जबर्दस्त विरोध हो रहा है। कई दफा विरोध कर रहे लोगों पर पुलिसिया कहर बरपने की घटनाएं भी हुईं, जिनमें कई लोगों की मौत हो गई। इसके अलावा महिलाओं और बच्चों को हमेशा की तरह यहां पर भी जबरन हिंसा का प्रकोप भोगना पड़ा।

आखिर महिलाएं और बच्चे ही क्यों?

इन सब घटनाओं के बारे में जानकर यही लगता है कि आखिर हिंसा के बाद का सारा आक्रोश बाहर निकालने के लिए महिलाओं और बच्चों को ही क्यों चुना जाता है? इसका सीधा सा जवाब है कि ऐसे लोगों के लिए महिलाएं सॉफ्ट टारगेट होती हैं। पुरुष प्रधान समाज में महिलाओं को वैसे भी ज्यादा विरोध करने की इजाजत नहीं दी गई है। ऐसे में पुरुष आसानी से अपना गुस्सा उन पर उतार लेते हैं।

मानसिक संतुष्टि के लिए

विशेषज्ञों का कहना है कि पुरुष अपना गुस्सा महिलाओं पर निकालते हैं, क्योंकि इससे उनके भीतर का गुस्सा बाहर निकल जाता है और मानसिक रूप से संतुष्टि भी मिल जाती है। वहीं कुछ पुरुषों की मानसिकता ही ऐसी होती है कि वे अपने दुश्मन से बदला लेने के लिए उसके घर की महिलाओं और बच्चों पर अत्याचार करते हैं। ऐसे कई मामले आए दिन सामने आते रहते हैं जब आपसी रंजिश के कारण किसी व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति के घर-परिवार को अपना शिकार बनाया हो। इस बारे में विशेषज्ञ कहते हैं कि बदला लेने की भावना पुरुषों में अधिक होती है और वे हर हाल में अपने दुश्मन को नीचा दिखाने की कोशिश करते हैं। निश्चित रूप से पुरुषों का यह व्यवहार उनकी मानसिक विकृति को ही प्रदर्शित करता है।

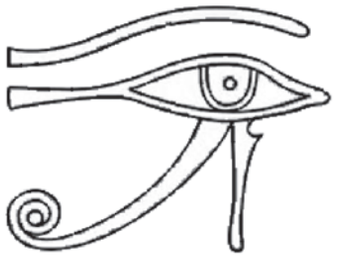

कैदी स्त्रियां

किसी भी व्यक्ति के मानवाधिकारों का खयाल रखना एक सभ्य देश और समाज की निशानी है, चाहे वह कोई सजायाफ्ता कैदी ही क्यों न हो। इस कसौटी पर भारतीय जेलें खरी नहीं उतरतीं। खासतौर से कैदी अगर महिला है तो उसे कुछ ऐसी परिस्थितियों का भी सामना करना पड़ता है जिसे एक तरह से अन्याय ही कहा जाना चाहिए। बीमारी, गर्भावस्था या छोटे बच्चों की देखरेख जैसे पहलू जेलों में उसके जीवन को और पीड़ादायी बनाते हैं। इन्हीं स्थितियों के मद्देनजर राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग ने कई सिफारिशें की हैं जिनसे महिला कैदियों को कुछ राहत मिलने के आसार जगे हैं। आयोग के मुताबिक जेल में बंद कोई महिला अगर गर्भवती या बीमार है या फिर उसका कोई बच्चा पूरी तरह उस पर निर्भर हो, तो उसे निजी मुचलके पर पहले रिहा कर दिया जाना चाहिए। आयोग ने कहा है कि हालांकि अपराध की प्रकृति की अनदेखी नहीं की जा सकती, मगर कुछ हालात में महिला कैदियों के प्रति अधिक मानवीय रवैया अपनाने की जरूरत है। गर्भ या प्रसव के दौरान महिलाओं की मुश्किलों को ध्यान में रखते हुए आयोग ने सुझाव दिया है कि महिला कैदी गर्भवती हो तो उसे प्रसव तक के लिए पैरोल पर छोड़ा जा सकता है। इसी तरह गंभीर बीमारी की हालत में उसके लिए तय सजा में नरमी बरती जा सकती है। इसके अलावा आयोग ने इस तथ्य पर भी गौर किया है कि जो महिलाएं जेलों में सजा काट रही होती हैं उनके बच्चे उपेक्षा के शिकार होते हैं। मां के सजायाफ्ता होने के चलते पालन-पोषण से लेकर दूसरी जरूरतों के मामले में भी वे आमतौर पर जेल प्रशासन की कृपा पर निर्भर होते हैं। कई बार छोटे बच्चों को अपनी मां के साथ जेल में रहने का विकल्प नहीं होता है।

गौरतलब है कि भारतीय जेलों में लगभग तेरह हजार महिलाएं विभिन्न मामलों में सजा काट रही हैं जिनमें करीब डेढ़ हजार अपने बच्चों के साथ ही जेलों में बंद हैं। जाहिर है, यह उन बच्चों के लिए बिना किसी अपराध के सजा काटने जैसा है। जेलों में उन्हें सामान्य जीवन की लगभग सभी बुनियादी जरूरतों से वंचित विषम स्थितियों में रहना पड़ता है। फिर एक मुश्किल यह है कि मां के साथ जेल में रह रहे इन बच्चों को आमतौर पर कहीं से कानूनी मदद नहीं मिल पाती है। इसमें न्यायपालिका की भूमिका को अहम मानते हुए आयोग ने राय दी है कि सरकार की ओर से ऐसे बच्चों को कानूनी सहायता पहुंचाने की पहल होनी चाहिए। फिलहाल महाराष्ट्र में ऐसी व्यवस्था है, जिसमें जरूरतमंदों की पैरवी के लिए वकील नियुक्त किए जाते हैं। अदालतों में लंबित मुकदमों के बोझ को लेकर लंबे समय से चिंता जताई जाती रही है। विधि मंत्रालय ने इसके लिए कुछ ऐसे प्रावधान भी किए जिनमें मामूली अपराधों के आरोप में सजा काट रहे लोगों को कुछ शर्तों पर रिहा किए जाने की व्यवस्था की गई। मगर इससे कोई खास फर्क नहीं आ सका है। पुरुष कैदियों की तुलना में महिला कैदियों को ज्यादा समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इस लिहाज से बाल संरक्षण आयोग की सिफारिशें स्वागतयोग्य हैं। उम्मीद की जानी चाहिए कि सरकार इन्हें स्वीकार करेगी।

नए सामाजिक संदर्भों में कुछ पुराने सवाल

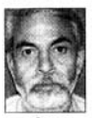

ज्ञानेंद्र रावत

इधर कुछ समय से यह बहस बार-बार उठ रही है। दिल्ली की एक अदालत ने हाल में सामाजिक बदलावों के मद्देनजर देश की संसद और सांसदों से लड़कियों के बालिग होने की उम्र के मामले पर फिर से विचार करने की सलाह दी है।

पिछले कुछ वर्षों से लड़कियों के बालिग होने की उम्र घटाने या विवाह की उम्र 18 से कम कर 15 कर दिए जाने का सवाल बहस का मुद्दा बना हुआ है। कभी इस बाबत सुप्रीम कोर्ट में याचिका दायर की जाती है और सुप्रीम कोर्ट लड़की के वयस्क होने के बारे में सरकार को नोटिस जारी करती है कि वह स्पष्ट करे कि लड़की के वयस्क होने की उम्र क्या हो। कभी दिल्ली हाईकोर्ट विवाह की उम्र 15 बरस होने संबंधी फैसला देती है और इसी आलोक में आंध्रप्रदेश हाईकोर्ट यह मानती है कि यदि विवाह के समय लड़की की आयु 15 वर्ष हो गई हो तो उस विवाह को जायज मान लेना चाहिए। इस बार दिल्ली की कड़कड़डूमा स्थित अदालत में एडीशनल सेशन जज राजेंद्र कुमार शास्त्री ने बलात्कार और अपहरण के मामले में आरोपी को बरी करते हुए सामाजिक बदलावों के मद्देनजर समाज की नुमाइंदगी करने वाले सांसदों से लड़कियों के बालिग होने की उम्र के मामले पर फिर से विचार करने की सलाह दी है। अदालत का मानना है कि आज लड़कियां कानूनन तय उम्र के दायरे से पहले ही मेच्योर हो रही है और 18 साल तक की लड़कियों को नाबालिग मानने वाले मौजूदा कानून से कई बेगुनाह युवक आरोपी बने हुए हैं। गौरतलब है कि लड़की के 18 साल पूरे होने में कुछ महीने या साल भर के फासले के कारण बहुतेरे युवक अपहरण व बलात्कार जैसे संगीन अपराधों में जेल की सजा काट रहे हैं। यह बढ़ते बलात्कार और अपहरण के मामलों की एक कड़वी सच्चाई है। अदालत ने कहा है कि किशोर अवस्था में ही प्यार का अहसास होता है और उस समय कोई प्रेमी अपनी प्रेमिका का जन्म प्रमाण पत्र नहीं देखता। इसलिए सामाजिक बदलावों को देखते हुए लड़कियों के बालिग होने की उम्र 18 साल से कम किए जाने की जरूरत है। दरअसल यह एक ऐसा सवाल है जिस पर पिछले तीन साल से बहस जारी है, लेकिन दुख इस बात का है कि सरकार इस मसले पर कोई सर्वसम्मत निर्णय लेने में आज तक नाकाम रही है। सच तो यह है कि यह मसला हमारी सोच, बर्ताव में कहीं-न-कहीं गड़बड़ी, भिन्नता और स्वार्थ से जुड़ा हुआ है अन्यथा ऐसा कोई कारण नजर नहीं आता, जिससे यह निर्णय ले पाने में इतना विलंब होता। गौरतलब यह है कि हिंदू मैरिज एक्ट और चाइल्ड मैरिज एक्ट (रिस्ट्रेंट) के अनुसार लड़की के विवाह की उम्र 18 वर्ष निर्धारित की हुई है। इसमें सबसे अहम बात यह है कि 18 वर्ष से कम आयु में विवाह हो जाने पर भी उसे तोड़ा नहीं जा सकता। इस मामले में असल पेच यही है। इस संबंध में बुद्धिजीवी, शरीर वैज्ञानिक, चिकित्सक, समाजविज्ञानी, मनोविज्ञानी और मनोचिकित्सक सभी की एकमुश्त राय है कि 18 वर्ष से कम उम्र की लड़की को किसी भी दृष्टि से विवाहयोग्य परिपक्व या बालिग नहीं माना जा सकता।

> *यह ऐसा सवाल है जिस पर पिछले तीन साल से बहस जारी है, लेकिन सरकार इस मसले पर कोई सर्वसम्मत निर्णय नहीं ले पाई है। असल में इस पर तमाम विशेषज्ञों में भी मतभेद हैं और कई तरह के नैतिक तथा सामाजिक मान्यताएं और मूल्य इससे जुड़े हैं। तो, क्या नए परिप्रेक्ष्य वाकई इसकी मांग करते हैं कि विवाह की आयु-सीमा घटाई जाए।*

भारतीय दंड संहिता की धारा 375 के मुताबिक यदि पत्नी की आयु 15 वर्ष से ऊपर है तो उस दशा में पति पर बलात्कार का आरोप नहीं लगता यानी उसे संसर्ग की अनुमति है। इसके अनुसार सहमति से संसर्ग की आयु 16 वर्ष मानी गई है। बीते साल में दिल्ली व आंध्र हाईकोर्ट के इस निर्णय कि विवाह के समय यदि लड़की की आयु 15 वर्ष हो तो उसे जायज मान लेना चाहिए, पर भी बवाल बावेला मचा था तथा यह निर्णय तब भी कई सामाजिक संगठनों के गले नहीं उतरा था, कमोबेश आज भी वही स्थिति है। जहां तक लड़की के बालिग होने की कानूनन उम्र 18 साल होने का सवाल है, निश्चित है इस उम्र में भी लड़कियां न अपना और न परिवार का भला-बुरा सोचने में समर्थ होती हैं, न मानसिक रूप से स्वतंत्र निर्णय लेने में पूर्णतः परिपक्व ही होती हैं। अधिकांशतः भावनात्मक रूप से वे इस मामले में माता-पिता पर ही आश्रित होती हैं।

गौरतलब है कि यह उम्र लड़की की पढ़ाई-लिखाई की होती है। इसमें वह जरा से बहकावे से भ्रमित हो गलत निर्णय ले अपना भविष्य चौपट कर लेती है। इस उम्र में उसे बालिग करार देकर स्वतः विवाह या संसर्ग की छूट देना तर्कसंगत नहीं कहा जा सकता। उसे खुद अपनी इच्छा से फैसले लेने का अधिकार देना उसके जीवन को तबाह करना है। इससे जहां सारा समाज प्रभावित होगा, साथ ही सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था में बिखराव भी पैदा होगा। माता-पिता द्वारा लिए गए निर्णय लड़कियों को भले रास न आएं लेकिन वे जहां उनके लिए हितकारी होते हैं, वहीं समाज में उनके दूरगामी प्रभाव भी होते हैं। यह निर्णय बाल विवाह में स्वतः वृद्धि का कारण बनेगा। उस स्थिति में जबकि देश के राजस्थान और मध्यप्रदेश जैसे राज्य बाल-विवाह के मामलों में कीर्तिमान स्थापित किए हुए हैं, जिनमें राजनेताओं की उपस्थिति विशेष रूप से उल्लेखनीय होती है। इस बारे में प्रख्यात मनोचिकित्सक डॉ. स्मिता एन देशपांडे का कहना है कि - 'लड़की को 18 वर्ष से पहले यानी 15-16 वर्ष की उम्र में बालिग मान लेना अनुचित है। यह लड़के-लड़कियों दोनों के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। यदि लड़की के जीवन को बचाना है तो जरूरी है कि या तो बालिग होने की लड़की की उम्र 18 वर्ष से थोड़ी और बढ़ा दी जाए या फिर उतनी ही रखी जाए।' प्रख्यात सामाजिक कार्यकर्ता और राष्ट्रीय बाल फिल्म सोसाइटी की अध्यक्ष नफीसा अली का भी यही मानना है। अधिकांश बुद्धिजीवी और महिला संगठनों का मानना है कि इससे बाल विवाह रोकने के प्रयासों को धक्का लगेगा।

जानी-मानी सामाजिक कार्यकर्ता, अनेक महिला संगठनों से जुड़ी व राज्यसभा सदस्य वृंदा करात इस संदर्भ में कहती हैं, 'जब लड़की के बालिग होने की उम्र घटेगी; उस दशा में स्वाभाविक है कि लड़के के बालिग होने की उम्र भी घटेगी। लड़की-लड़के के बालिग होने की उम्र सीमा का नया निर्धारण देश और समाज दोनों के लिए घातक होगा और इसके परिणाम भयंकर होंगे। उस स्थिति में सब कुछ गड़बड़ हो जाएगा। अदालत के इस निर्णय से कम उम्र लड़कियों को बहलाना-फुसलाना और आसान हो जाएगा और यह उनके शोषण का एक रास्ता बन जाएगा। इस बारे में विधि आयोग की सिफारिशों को दृष्टिगत रखते हुए अदालतों को केस आधारित फैसले लेने चाहिए। जरूरत है इस मुद्दे पर संवेदनशीलता से विचार किए जाने की। यही समय की मांग है।' देश के सांसदों को भी बच्चियों के अभिभावक का दायित्व निभाते हुए सोचना होगा कि क्या उचित है और क्या अनुचित और तभी देश व समाज हित में उचित निर्णय लेना संभव होगा।

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं)

गंभीर अपराध में एसआईआर तैयार होगी

नाबालिग के खिलाफ एफआईआर नहीं

पुरुषोत्तम वर्मा

नई दिल्ली। ऐसा अपराध, जिसमें सात साल और उससे कम की सजा है और आरोपी नाबालिग (18 वर्ष से कम) है तो ऐसे मामलों की अब एफआईआर दर्ज नहीं होगी। नाबालिग की न तो चार्जशीट तैयार की जाएगी और न ही उसे लॉकअप में बंद किया जाएगा। यही नहीं इसके लिए पुलिस स्टेशनों में जुबनाइल अफसर तैनात किए जा रहे हैं। गंभीर अपराध करने पर भी नाबालिग को तीन साल से ज्यादा की सजा नहीं होगी। उसके खिलाफ धारा 107/151 भी नहीं लगेगी।

पुलिस को अगर बच्चे का अपराध गंभीर लगता है तो डीडी एंट्री कर उसे जुवेनाइल जस्टिस बोर्ड के सामने पेश किया जाएगा और नाबालिग की एसआईआर (सोशल इंवेस्टिगेशन रिपोर्ट) तैयार होगी। हालांकि ऐसा कानून सुनकर दिल्ली पुलिसकर्मी चौंक रहे हैं। इस संबंध में दिल्ली पुलिस अधिकारियों द्वारा झड़ौदाकलां स्थित ट्रेनिंग सेंटर में अन्य पुलिसकर्मियों को इस कानून के बारे में बताकर उन्हें इस बाबत जागरूक किया जा रहा है कि नाबालिग अपराध करता है तो पुलिसकर्मी कैसे निपटें। हाल ही में 'दा जुबनाइल जस्टिस एक्ट-2000' में नाबालिगों के बेहतर भविष्य के लिए संशोधन किया गया है और यह संशोधित एक्ट वर्ष 2007 के आखिर से लागू कर दिया गया है। झड़ौदा कलां स्थित सेंटर में पुलिसकर्मियों को बताया जा रहा है कि संशोधित एक्ट के चैप्टर-तीन और रूल-11 में कहा गया है कि छोटा अपराध झपटमारी, चोरी या ऐसा अपराध, जिसमें सात साल तक की सजा है और वह अपराध नाबालिग करता है तो उसके खिलाफ एफआईआर दर्ज नहीं होगी और न ही कोई रिकार्ड रखा जाएगा।

बढ़ेंगे अपराध

नई दिल्ली। अगर कोई पुलिस स्टेशन में आकर कहता है कि इस युवक ने चेन छीन ली है और पुलिस उक्त युवक को पकड़ लेती है। अब अगर युवक नाबालिग निकलता है तो पुलिस को हर हालत में उक्त युवक को छोड़ना होगा। दिक्कत ये है कि नाबालिग के बारे में पुलिस को पता कैसे चलेगा। पुलिस अधिकारियों का कहना है कि ऐसे हालातों में अपराध बढ़ेगा।

पहले

- एफआईआर दर्ज होती थी
- गिरफ्तारी होती थी
- अपराध करने पर नहीं छोड़ा जाता था
- 107/151 लगती थी

अब

- अब एसआईआर रिपोर्ट बनेगी
- अब नहीं होगी
- अब छोड़ा जाएगा
- अब नहीं लगेगी

पूजनीयों की करतूत के आगे बेबस बचपन

बाल यौन शोषण

अंजलि सिन्हा

रोमन कैथोलिक धर्मगुरु पोप बेनेडिक्ट हाल ही में अमेरिका के दौरे पर गए थे। उनकी इस यात्रा के जिस विशेष उद्देश्य के बारे में पश्चिमी जगत में विशेष चर्चा रही, वह है पादरियों द्वारा बच्चों के यौन उत्पीड़न का मसला। यह मुद्दा पिछले एक-डेढ़ दशक से ज्वलंत बना हुआ है। एक अर्थ में जहां पीड़ितों तथा उनकी पीड़ा से सरोकार रखनेवालों के लिए यह समस्या एक गंभीर रूप में उभरी है, वहीं चर्च के लोग तथा उसके अनुयायी इसे भुला देने में या अधिक से अधिक कुछ बाहरी बदलाव के रूप में इसका समाधान देख रहे हैं।

पोप की ताजा यात्रा को लेकर अमेरिकी अखबारों में जो रिपोर्टें आईं, उनसे ऐसा एहसास हुआ कि पोप की अमेरिका यात्रा कहीं उनकी प्रायश्चित यात्रा तो नहीं थी। ऐसी अटकलों का लगना स्वाभाविक है, क्योंकि अपनी इस यात्रा में पोप बेनेडिक्ट न केवल उन लोगों से मिले, जो अब बड़े और प्रौढ़ हो गए हैं, और जो अपनी बाल्यावस्था या किशोरावस्था में स्थानीय पादरियों या चर्च के अन्य अधिकारियों के यौन उत्पीड़न का शिकार हुए थे, बल्कि उन्होंने इस प्रसंग को लेकर कुछ बातें भी कहीं। एक तरफ पोप ने यह कहा कि ऐसी घटनाओं को लेकर वह शर्मिंदा हैं, जिनसे चर्च की छवि को धक्का पहुंचा है। दूसरी तरफ, उन्होंने धर्मगुरुओं द्वारा बच्चों के साथ किए गए यौन अपराध के लिए अमेरिका की धर्मनिरपेक्ष एवं उपभोक्तावादी संस्कृति को जिम्मेदार बताया।

लोगों को यह सुनकर काफी हैरत हुई कि उन्हें पीड़ितों की पीड़ा से नहीं, वास्तव में चर्च की छवि पर लगे धब्बों से परेशानी है। चर्च के इतिहास पर नजदीकी से नजर रखने वालों के लिए पोप बेनेडिक्ट के इन वक्तव्यों पर अचरज नहीं हुआ, क्योंकि वे बखूबी जानते थे कि पोप बेनेडिक्ट जब कार्डिनल के तौर पर कार्यरत थे, तब इस मसले पर उनका क्या रुख

था? वर्ष 2005 में अमेरिका में पादरियों द्वारा बच्चों के यौन उत्पीड़न का मसला जब बड़ा मुद्दा बना था, तब कार्डिनल पद पर रहते हुए पोप बेनेडिक्ट ने यौन उत्पीड़न की तमाम घटनाओं को खारिज करते हुए चर्च के खिलाफ सुनियोजित षड्यंत्र बताया। उस समय यौन उत्पीड़न की घटनाओं के आरोपों को झेल रहे पादरियों को तथा चर्च के अन्य अधिकारियों को सजा के नाम पर एक जगह से दूसरी जगह भेज दिया गया था। लेकिन कई मामलों में पाया गया कि वहां भी उन्होंने वही अपराध दोहराया।

वर्ष 2002 में न्यूयॉर्क सिटी के यूनिवर्सिटी कॉलेज ऑफ क्रिमिनल जस्टिस ने एक सर्वेक्षण कराया था। उस सर्वेक्षण में उसने पाया कि 1950 के बाद अमेरिका में 4,392 पादरी तथा चर्च के अन्य अधिकारी बच्चों के साथ यौन अपराध के दोषी पाए गए थे, जिनके अत्याचार के शिकार 13,000 बच्चे बने और इन मामलों को सुलझाने के लिए चर्चों को दो बिलियन डॉलर तक मुआवजा देना पड़ा।

वैसे चर्च से जुड़े संस्थानों में बाल यौन उत्पीड़न के मामलों को लेकर समय-समय पर चर्चा होती रहती है। 21 सितंबर, 2006 को एक खबर आई थी कि फिलाडेल्फिया की अदालत के सामने जब यौन शोषण के मामले आए, तब सरकार ने कानूनी सुधार की बात कही थी। साल भर पहले भी अदालतों ने माना था कि पादरियों द्वारा बच्चों का यौन शोषण होता है। शहर के दो वकीलों ने चर्च को खुला पत्र लिखा था, जिसमें पादरियों पर कार्रवाई की मांग की गई थी।

यद्यपि पूरे समाज में बच्चों के प्रति बढ़ता यौन शोषण चिंता का विषय है। और इससे कोई धर्म अछूता नहीं है, बल्कि समाज के कई हिस्सों, जैसे परिवार, शिक्षण तथा धार्मिक संस्थानों में मासूमों के यौन उत्पीड़न के मामले उजागर हुए हैं। लेकिन धार्मिक संस्थानों के बारे में बोलना अब भी कठिन बना हुआ है, क्योंकि यहां मामला आस्था का होता है। फिर बच्चे सबसे कमजोर स्थिति में होते हैं। एक तो वे अबोध होते हैं, जिसके कारण पहले तो अपराध को समझ नहीं पाते हैं। फिर घटना को अंजाम देने के बाद उन्हें डरा-धमकाकर चुप कराना भी आसान होता है। कई बार घरवाले या माता-पिता भी अनभिज्ञ होते हैं। उनकी आस्था या विश्वास का भी फायदा उठाया जाता है। यह एक ऐसा संवेदनशील मुद्दा है, जिस पर पूरे समाज में अभी एहसास की भारी कमी है।

यह सोचने का मुद्दा है कि ऐसे धार्मिक लोगों के अपराधों से वाकिफ होते हुए भी लोग उसके प्रति आस्थावान कैसे हो सकते हैं। आखिर कब तक अपने माता-पिताओं की आस्था का खामियाजा भविष्य के निर्माता बच्चे झेलते रहेंगे। ऐसे में, क्या अब वक्त नहीं आ गया है कि ऐसे अपराधियों से बच्चों को बचाया जाए और इंसानियत के भविष्य को सुरक्षित किया जाए?

(लेखिका स्त्री अधिकार संगठन से संबद्ध हैं)

यौन शोषण का समाजशास्त्र

अलका आर्य

इस बीती फरवरी के महीने दिल्ली विश्वविद्यालय के भूशास्त्र विभाग की एक पीएचडी छात्रा ने अपने एक प्रोफेसर पर यौन शोषण का आरोप लगाया था। छात्रा का आरोप था कि जिस प्रोफेसर की निगरानी में वह भूशास्त्र में पीएचडी कर रही है, उसने शुरू से ही उसके साथ अश्लील व्यवहार किया। पहले तो उसने विरोध नहीं किया, लेकिन जब वह काफी बढ़ गया तो उसने विरोध किया। विरोध की सजा यह मिली कि प्रोफेसर ने छात्रा का वजीफा रोक दिया। इस छात्रा का यह भी कहना है कि वह बीती 13 से 15 सितंबर के दौरान शोध संबंधी कार्य के लिए मुंबई स्थित भाभा एटमिक रिसर्च सैंटर गई थी, तब भी वहां पर प्रोफेसर ने उससे उसके रूम में आकर उससे शारीरिक संबंध बनाने को कहा था।

दक्षिण अफ्रीकी देश हेती में स्कूल के अध्यापकों द्वारा छात्राओं का यौन उत्पीड़न आम बात है। दरअसल कक्षाओं को जहां लड़कियां सशक्त होती है, आगे बढ़ने के लिए ज्ञान व आत्मनिर्भरता हासिल करती हैं, यानि सीखने का नखलिस्तान होना चाहिए, लेकिन खेदजनक यह है कि इन्हीं कक्षाओं में उनके साथ पुरुष अध्यापक मौखिक अश्लील हरकतें करते हैं व कई बार यौन उत्पीड़न भी। दुनिया के किसी भी कोने से जब आंखें झुकाने वाली ऐसी खबरें पढ़ने-सुनने को मिलती है तो अहसास होता है कि लड़कियों के लिए स्कूल तक सफर आसान नहीं है।

एमनेस्टी इंटरनेशनल द्वारा हाल में जारी 'सेफ स्कूल्स एवरी गर्ल्स राइटस' नामक रपट बताती है कि लड़कियों के लिए हिंसा, शिक्षा हासिल करने की राह में एक बहुत बड़ी रुकावट है। यह हिंसा अक्सर नजरंदाज कर दी जाती है। अफ्रीकी देश हेती में स्कूली अध्यापक व प्रशासनिक अधिकारी छात्राओं को अपमानित करते हैं और उनका यौन व मनोवैज्ञानिक उत्पीड़न भी करते हैं। यौन उत्पीड़न की शिकार लड़कियों के लिए यह सामाजिक दाग लगने के बाद उस स्कूल में पढ़ना बहुत मुश्किल हो जाता है, लिहाजा वे उस स्कूल को छोड़ दूसरे स्कूल में चली जाती है। अमेरिका, लैटिन अमेरिका, अफ्रीकी व एशियाई देशों के स्कूलों में लड़कियों पर यौन हमले किए जाते हैं। प्लान नामक गैर-सरकारी संगठन के अनुसार टोगो में अध्यापकों द्वारा लड़कियों का यौन उत्पीड़न अक्सर किया जाता है। यह इतना ज्यादा है कि इसे वर्णित करने के लिए पूरी शब्दावली गढ़ी गई है। अंक या ग्रेड देते समय इस तरह की टिप्पणी की जाती है, जिससे पता चलता है कि अच्छे अंक अध्यापक के साथ यौन संबंध बनाने का नतीजा है। फिलिस्तीन की स्कूल छात्राओं के लिए शिक्षा की यह डगर कुछ ज्यादा ही कठिन है। उग्रवादी, इजरायल आर्मी चैक पोस्ट लड़कियों की गतिविधियों को कई तरह से सीमित कर देते हैं, जिसके चलते स्कूल तक पहुंचने में कई अड़चनें पैदा होती हैं। स्कूल तक पहुंचने के लिए यातायात पर व्यय में काफी वृद्धि हुई है, क्योंकि धमकियों व सुरक्षा कारणों से स्कूल का रूट लंबा करना पड़ा है। अब छात्राओं को कई बसें बदल कर स्कूल जाना पड़ता है। यातायात में वृद्धि, स्कूल तक की लंबी यात्रा व इस कारण घर लेट पहुंचना और कर्फ्यू का स्कूली लड़कों की अपेक्षा लड़कियों पर ज्यादा प्रभाव पड़ा है।

आर्थिक स्थिति में उल्लेखनीय गिरावट आने के कारण अधिकतर परिवारों की प्राथमिकता लड़कों की पढ़ाई पर खर्च करना हो गई है। अभिभावक चैक पोस्ट पर होने वाली निरंतर चैकिंग के कारण भी लड़कियों को वहां असहाय महसूस करने वाली स्थिति में छोड़ने का खतरा नहीं उठाना चाहते। ऐसी स्थिति में लड़की के साथ वहां कुछ भी अप्रिय व देर रात तक घर लौटने की आशंका से ग्रस्त कुछ अभिभावक लड़कियों को स्कूल न भेजने का विकल्प चुनते हैं। अधिकतर मुल्कों में स्कूली छात्राओं पर जबरन वेश्यावृत्ति में धकेल दिए जाने का खतरा मंडरा रहा है। कोसावो में सुरक्षा की कमी व स्कूल प्रशासन द्वारा लड़कियों को ऐसी स्थितियों से बच निकलने का प्रशिक्षण न देने के कारण वहां स्कूली लड़कियां लगातार जबरन वेश्यावृत्ति की शिकार हो रही हैं। कई मामलों में अभिभावक ऐसे खतरों के मद्देनजर अपनी लड़कियों को स्कूल जाने से मना कर देते हैं। अक्सर ऐसा देखा गया है कि जब कभी स्कूली छात्राओं के साथ शारीरिक छेड़छाड़, यौन उत्पीड़न की घटनाएं मीडिया या किसी अन्य माध्यम से समाज तक पहुंचती हैं तो घर-परिवार के बड़े सदस्य स्कूल/कॉलेज में जाने वाली लड़कियों की सुरक्षा के प्रति खास चिंतित नजर आते हैं व लड़कियों की सुरक्षा के नाम पर उनकी निगरानी का काम शुरू हो जाता है। लड़कियों की सभी तरह की गतिविधियां सीमित कर दी जाती है, कहीं-कहीं तो अभिभावक पीड़ित लड़की को हमेशा के लिए स्कूल भेजना बंद कर उसे घर बिठा लेते हैं व थोड़े समय बाद उसकी छोटी उम्र में ही शादी कर देते हैं। ऐसा नहीं है कि इस हादसे के दुष्परिणाम सिर्फ पीड़ित लड़की तक ही सीमित हो बल्कि अन्य लडकियों की पढ़ाई पर भी उस समय नकारात्मक असर साफ दिखाई देता है, जब कुछ अभिभावक ऐसे हादसों की आंशका की मद्देनजर अपनी लड़कियों को प्राईमरी या मिडिल स्कूल के बाद दूर स्थित हाई स्कूल में न भेजने का फैसला ले लेते हैं। एक तरफ अभिभावक लड़कियों को हतोत्साहित करने वाले ऐसे कदम उठाते हैं तो दूसरी तरफ स्कूल प्रशासन लड़कियों को नियंत्रित करने के मकसद से उनके लिए उत्तेजक कपड़े न पहनने, बॉडी लेंग्वेज पर नियंत्रण रखने वाली आचार संहिता जारी कर देते हैं।

विश्लेषण | मोहन सिंह

खाद्यान्न का विश्व-संकट और भारत की रणनीति

पूरे विश्व में खाद्यान्न का संकट गंभीर हो गया है। संयुक्त राष्ट्र के महासचिव बान की मून ने कहा है कि इस गंभीर चुनौती से निपटने के लिए एक टास्क फोर्स बनाना बहुत जरूरी है और जून के महीने में संयुक्त राष्ट्र की देखरेख में विश्व के राष्ट्राध्यक्षों का आपातकालीन सम्मेलन बुलाना भी जरूरी है। विकासशील देशों की आबादी की आमदनी का साठ फीसद खाद्यान्न पर खर्च होता है। विश्व स्तर पर मांग और उपलब्धता में विकराल अंतर होने के कारण खाद्य पदार्थों के दाम आसमान छू रहे हैं इसलिए लोग काफी तनाव में हैं। दूसरी तरफ अमेरिकी विदेश मंत्री ने एक सम्मेलन में कहा कि भारत और चीन के लोगों की खानपान की पद्धति में काफी बदलाव हुआ है। इससे उन देशों में भी खाद्य पदार्थों की खपत बढ़ी है जिसके कारण उन देशों ने खाद्यान्न के निर्यात को प्रतिबंधित कर अपने देश में ही स्टाक जमा किया। इस वजह से विश्व में संकट की स्थिति पैदा हो गई है। अमेरिकी राष्ट्रपति जॉर्ज बुश ने भी खाद्यान्न संकट के लिए भारत-चीन के बारे में इसी तरह का वक्तव्य दिया। इससे पहले भारत में खाद्यान्न की कीमतें बढ़ने लगीं तो भारत के कृषि मंत्री ने भी वक्तव्य दिया कि हमारे देश में खानपान की आदतों मे बदलाव होने से खाद्यान्न की खपत बढ़ी है और कीमतों के बढ़ने की एक वजह यह भी है।

अमेरिका की चिंता वाजिब है कि भारत के लोग '50 और '60 के दौर में अमेरिकी गेहूं और मक्के के दाने के लिए मुंहताज होते थे। भारत के पुरुषार्थी किसानों ने सारे कष्ट उठाकर गेहूं, चावल, चीनी के मामले में इस देश को आत्मनिर्भर बनाया। उचित कीमत न मिलने के कारण उन्होंने भीषण कष्ट भी झेले। भारत की बड़ी आबादी का हिस्सा अभी बमुश्किल दो वक्त का खाद्यान्न जुटा पाता है। पौष्टिक आहार तो उसकी पहुंच से बाहर है। पिछले दशक में पिज्जाहट और मैकडॉनल्ड की बड़े शहरों में दुकानें खुली जहां बर्गर पिज्जा खाने वालों की संख्या आबादी का एक फीसद भी नहीं। देश में अभी भी बिना भोजन के अभाव में मौत की खबरें छपती हों जहां सस्ता अनाज पाने वाले कार्ड धारक 18 करोड़ और अन्नपूर्णा से मुफ्त राशन पाने वाले 4 करोड़ लोग हों उस देश का कृषि मंत्री कहे कि लोगों के खानपान की आदतें बदल गईं तो आश्चर्य होता है।

विश्व की दो अरब आबादी आज खाद्य संकट से जूझ रही है। विश्व का चौकीदार अमेरिका स्वयं इस संकट का शिकार है। उस देश में सबसे सस्ती खानपान की चीजें थीं किन्तु एक वर्ष में खाद्य सामग्री के दाम 60 प्रतिशत बढ़े हैं। दुनिया को संकट के समय खाना खिलाने का दंभ पाले अमेरिका आज सबसे अधिक त्रस्त है। उस देश में महंगाई के खिलाफ आंदोलन हो रहे हैं। खाद्यान्न की जमाखोरी बढ़ रही है। वहां के व्यापारी कहते हैं बैंक में जमाराशि के मुकाबले इसी राशि का खाद्यान्न स्टाक करके रखने से उसकी कीमत ज्यादा मिलेगी। सस्ते खाद्यान्न का स्वाद कड़वा हो गया। पहले भारत उनका गेहूं खरीदता था अब उन्हें भारत से गेहूं और चावल के खरीद की जरूरत पड़ गई क्योंकि उनके देश के किसानों ने विगत तीन वर्षों में अपने देश में खाद्यान्न की जगह बायो फ्यूएल पैदा किया।

विश्व की दो अरब आबादी खाद्य संकट से जूझ रही है। विश्व का चौकीदार अमेरिका स्वयं इस संकट का शिकार है। उस देश में सबसे सस्ती खानपान की चीजें थी किंतु एक वर्ष में खाद्य सामग्री के दाम 60 प्रतिशत बढ़े हैं। दुनिया को संकट के समय खाना खिलाने का दंभ पाले अमेरिका आज सबसे अधिक त्रस्त है

वैकल्पिक ईंधन पैदा करने से अमेरिकी किसानों की आमदनी में तीन गुना की वृद्धि हुई तो महंगा खाद्य खरीद कर वे खा सकते हैं। इसके लिए भारत को दोष देने की जरूरत नहीं। जिस देश की अर्थव्यवस्था का आधार मुनाफाखोरी है उस देश के लोग मुनाफे की चीजें खेत में पैदा कर रहे हैं। वहां के किसान धन कमाने के वैकल्पिक साधन तलाश करें और भारत-चीन के किसान का पैदा किया सस्ता अनाज खाकर अपना पेट भरें तो क्या यही पद्धति अच्छी है? अमेरिका का साथी जापान भी कह रहा है कि भारत और चीन अपने देश का खाद्यान्न भंडार सुरक्षित रख रहे है। विश्व के ईंधन उत्पादन देश रोजाना तेल की कीमत बढ़ा रहे हैं। भारत विश्व का सबसे बड़ा तेल खरीदार देश है। जब भारत को गत वर्ष गेहूं की कमी पड़ी तो अमेरिका और कनाडा ने अंतिम खेप 2100 रुपये क्विंटल पर दी। अब संकट का दौर उलट गया तो बासमती चावल जो मध्य एशिया और अमेरिका की पहली पसंद है, उसकी कीमत अमेरिकी बाजार में 1500 डॉलर प्रतिटन हो गई तो अमेरिका परेशान हो गया।

दुनिया का दमन करने, सीना तान चलने वाले देशों को रौंदने में अमेरिका जितना धन बर्बाद करता है उतनी ही रकम विश्व की कंगाली खत्म करने में खर्च करता तो शायद विश्व में आतंकवाद और नक्सलवाद से लड़ने की कारगर रणनीति होती, लेकिन उसकी रुचि दुनिया को गरीब बनाकर अपनी अमीरी का राजप्रसाद खड़ा करने की रहती है जिसका अन्तर्विरोध अब वह भी झेल न सकेगा। खाद्यान्न के दाम बढ़ेंगे तो खाद्यान्न उत्पादक निर्यातक देशों के पास धन जाएगा। लेकिन अमेरिकी आर्थिक विश्लेषक इसकी काट करने की तैयारी में है। अमेरिकी विदेश मंत्री ने चलताऊ ढंग से इस बात को नहीं कहा है कि भारत और चीन के कारण खाद्यान्न के दाम बढ़े हैं। उसने इस थ्योरी को आगे बढ़ाने के लिए जापान को आगे कर दिया है। अमेरिकी अर्थशास्त्री कह रहे हैं कि यह खामोश सुनामी है जो भारत की ओर से उठी है और दुनिया उसकी चपेट में है।

खाद्यान्न ही जीवन का आधार है। मांस और दूध उत्पादन भी खेती पर निर्भर है। विश्व का खाद्य संकट आगामी दस वर्षों तक चलेगा। इसलिए भारत के किसान को विश्व की गरीब मानवता को खिलाने के लिए अन्न उत्पादन करना है। भारत को पिछड़ा देश घोषित कर हिकारत की नजर से देखने वाली अमेरिकी जनता में उस समय चमक की रेखा दौड़ पड़ी जब वहां के संचार साधनों ने प्रमुखता के साथ यह खबर लगातार प्रसारित की कि भारत में इस वर्ष गेहूं और चावल का व्यापक अतिरिक्त उत्पादन हुआ है। मिस्र और अफ्रीका के कुछ देशों की खाद्य दंगों की सूचना से चिन्तित अमेरिकी समाज को भी संतोष की अनुभूति हुई कि यदि भारत में अतिरिक्त खाद्यान्न है तो कोई कीमत देकर अमेरिका खरीद सकता है।

यह समय है जब भारत के वित्त मंत्री अमेरिका पर तेल व उर्वरक के बेतहाशा बढ़ रही कीमतों के लिए कारगर दबाव बना सकते हैं- भारत को राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन को गंभीरतापूर्वक न केवल लागू करना चाहिए अपितु लक्ष्य तक पहुंचाना चाहिए। खाद्य निर्यात की दोहरी नीति होनी चाहिए। नेपाल, अफगानिस्तान, श्रीलंका, बर्मा, बांग्लादेश के साथ वैध तरीके से कम निर्यात शुल्क पर खाद्य निर्यात की छूट नहीं हुई तो तस्करी बढ़ेगी। राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन के माध्यम से पूर्ण राज सहायता प्राप्त हो तथा इसकी भी राजकीय खरीद आवश्यक हो। सभी सूखाग्रस्त क्षेत्रों में खाद्य सुरक्षा मिशन का पैसा दाल और तिलहन फसलों के उत्पादन को प्रोत्साहित करने पर खर्च हो। गन्ना, गेहूं, धान का दायरा कम कर अधिक उत्पादन बढ़ा कर उसकी कमी पूरी की जा सकती है। कृषि उत्पादन की समन्वित नीति बनाकर केंद्रीय सरकार राज्यों को धन दे। राज्यों के वार्षिक बजट में 35744.42 लाख रुपये की राशि वितरित करने मात्र से मिशन पूरा नहीं होगा। इसके खर्च की दिशा को भी इंगित करना जरूरी है तब शायद 11वीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक भारत खाद्यान्न उत्पादन के माध्यम से विश्व का अग्रणी देश हो सकेगा और अमेरिकी विदेश मंत्री की भद्दी टिप्पणी का कारगर उत्तर दे सकेगा।

राशन की दुकानों पर हुआ राशन का टोटा

संजय दुटेजा/एसएनबी
नई दिल्ली, 22 मई।

- दो विभागों की लड़ाई का खमयाजा राशन धारकों को
- एफसीआई से ही हुई अनाज की आपूर्ति ठप
- सार्वजनिक वितरण प्रणाली को लगा झटका

प्रदेश सरकार भले ही गरीबों के लिए अंत्योदय व अन्नपूर्णा जैसी योजनाएं चलाकर उनके खाने का इंतजाम करने के दावा करे लेकिन राजधानी में पिछले एक सप्ताह से राशन की दुकानों पर ही राशन का टोटा हो गया है। इसका प्रमुख कारण एफसीआई के गोदामों से राशन की आपूर्ति न होना है। आपूर्ति निगम के तमाम प्रयासों के बावजूद गोदामों में अनाज के लिए जाने वाले ट्रक खाली लौट रहे है। एफसीआई अधिकारियों की इस मनमानी का खमयाजा प्रदेश के गरीब राशन कार्ड धारक भुगत रहे हैं।

दिल्ली के लगभग 30 लाख राशनकार्ड धारकों को सस्ती दरों पर अनाज उपलब्ध कराने के लिए राजधानी में कुल 2772 राशन की दुकानें हैं। इन दुकानों को प्रदेश के नागरिक आपूर्ति निगम द्वारा नियमित कोटे के अनुसार मांग के आधार पर राशन की आपूर्ति की जाती है लेकिन राजधानी में पिछले एक सप्ताह से राशन की अनेक दुकानें तो खाली हैं ही, स्वयं आपूर्ति निगम भी अनाज के संकट से जूझ रहा है। राशन की दुकानों की मांग को पूरा करने में वह असक्षम साबित हो रहा है। नागरिक आपूर्ति निगम के पास अनाज की इस कमी का प्रमुख कारण भारतीय खाद्य निगम के गोदामों से राशन की आपूर्ति न होना है। हालांकि प्रदेश को मिलने वाले अनाज का कोटा वित्तीय वर्ष शुरू होने से पहले ही निर्धारित हो जाता है लेकिन भारतीय खाद्य निगम व नागरिक आपूर्ति निगम के बीच आपसी झगड़े के कारण अनाज की आपूर्ति ठप है। झगड़े की शुरुआत पिछले दिनों खाद्य निगम के एक डिपो से अनाज के सैंपल भरवाए जाने व नागरिक आपूर्ति निगम की अध्यक्ष नीता बाली के साथ हुए विवाद से हुई।

इस विवाद के बाद खाद्य निगम के मायापुरी डिपो मैनेजर के खिलाफ पुलिस रपट भी दर्ज हुई थी। जानकारी के अनुसार गत 13 मई से आपूर्ति में दिक्कत शुरू हुई जब आपूर्ति लेने गए निगम के ट्रकों को गोदामों में नहीं घुसने दिया गया। इसके बाद 13,14 व 15 मई को कुछ राशन गोदामों से उठाया गया लेकिन बाद में वह भी रोक दिया गया।

नागरिक आपूर्ति निगम अध्यक्ष नीता बाली ने इस संबंध में प्रदेश के खाद्य मंत्री हारून यूसुफ को पत्र लिखकर राशन की आपूर्ति सुचारु कराने की मांग की है। उधर, एफसीआई अधिकारी आपूर्ति रोकने से इनकार करते हैं। उनका कहना है कि जहां से भी आपूर्ति की मांग आती है उसे पूरा किया जाता है।

किसको कितनी होती है आपूर्ति

288213 बीपीएल कार्ड धारकों के लिए	
गेंहू	6293 मीट्रिक टन
चावल	2765 मीट्रिक टन
	(प्रति माह)

150235 अंत्योदय कार्ड धारकों के लिए	
गेंहू	3755 मीट्रिक टन
चावल	1502 मीट्रिक टन
	(प्रति माह)

25 लाख एपीएल कार्ड धारकों के लिए	
गेंहू	3755 मीट्रिक टन
चावल	15579 मीट्रिक टन
	(प्रति माह)

प्रवीण प्रभाकर

मुद्दा

सवालों के घेरे में खाद्य प्रबंधन नीति

अनाज की बढ़ती कीमतों की वजह से केंद्र सरकार लगातार आलोचनाओं के घेरे में है। सरकार की संस्था लोकसभा पब्लिक एकाउंट कमेटी की रिपोर्ट ने सरकार की खाद्य प्रबंधन नीति को ही इसके लिए जिम्मेदार ठहराया है। इस रिपोर्ट के मुताबिक खाद्य प्रबंधन नीति में कई तरह की खामियां हैं और इसे जनता तक पहुंचाने वाली जन वितरण प्रणाली ठीक ढंग से काम नहीं कर रही है। रिपोर्ट की मानें तो बाजार और जनवितरण प्रणाली तंत्र के बीच की खाई ही महंगाई की जड़ है और अनाज की कालाबाजारी को यहीं से प्रश्रय मिल रहा है।

एक आकलन के मुताबिक जनवितरण प्रणाली के जरिए सरकार को सालाना 358 करोड़ रुपये की चपत लगती है। देश के डेढ़ करोड़ परिवार स्वीकारते है कि उन्हें जनवितरण प्रणाली से लाभान्वित होने के लिए रिश्वत देनी पड़ती है। 60 फीसद परिवारों के अनुसार जनवितरण प्रणाली के अंदर काम करने वाली दुकानों पर राशन की हमेशा किल्लत रहती है। चौंकाने वाली बात यह है कि जिन राज्यों में अकाल, भुखमरी और गरीबी की दर ज्यादा है वहां 80 फीसद परिवारों को इस प्रणाली के जरिए राशन नहीं मिल पाता है। वर्ष 2003-04 में गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों के लिए 16 राज्यों को एक करोड़ 40 लाख टन अनाज दिया गया। लेकिन इस प्रणाली में मौजूद खामियों की वजह से 50 लाख टन से कुछ ज्यादा अनाज ही गरीबी रेखा से नीचे गुजर-बसर करने वाले लोगों तक पहुंचा। बाकी अनाज कालाबाजारी के जरिए खुले बाजार में चला गया। जनवितरण प्रणाली के लिए उपलब्ध कराए जाने वाले अनाज का कालाबाजारी होना कोई नई बात नहीं है। बिहार और पंजाब में इस मद में आवंटित अनाज का 75 फीसद खुले बाजार में धड़ल्ले से बेचा जाता है।

हालांकि ऐसा भी नहीं है कि सरकारी खाद्य प्रबंधन और जनवितरण प्रणाली से हमारे देश को कोई फायदा नहीं पहुंचा। अपने स्थापना के शुरुआती सालों में इसने देश के गरीब तबकों को मुख्यधारा में जोड़ने की अहम भूमिका निभाई है। आज भी केरल और हिमाचल प्रदेश में जनवितरण प्रणाली बहुत बढ़िया तरीके से काम कर रही है। दरअसल जनवितरण प्रणाली बनायी ही इसलिए कि आम लोगों को खाद्य संकट से निजात दिलाई जाए, अनाज की कालाबाजारी रोकी जाए और गरीबों को कम से कम कीमत में अनाज उपलब्ध कराया जाए। इसी उद्देश्य से इस प्रणाली के तहत देश भर में 4.92 लाख दुकानें खोली गई। इन दुकानों से आम लोगों को बाजार मूल्य से कम कीमतों में अनाज मिलता था। बाद में इस योजना को और संवर्धित बनाने के लिए सरकार ने गरीबी रेखा से नीचे और गरीबी रेखा से ऊपर रहने वाले लोगों के आधार पर बांटा। गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों को टारगेटेड पब्लिक डिस्ट्रब्यूशन स्कीम के तहत अनाज मिलने लगा। उनके लिए अलग से राशन कार्ड बनने लगे जिसे 'बीपीएल' कार्ड कहा जाता है। लेकिन जैसे जैसे योजना का विस्तार हुआ वैसे-वैसे इसमें विसंगतियां भी आने लगीं। नतीजतन यह योजना कई राज्यों में कागजों तक ही सिमट कर रह गई और इसके जरिए मिलने वाला राशन खुले बाजार में पहुंचने लगा। इस कालाबाजारी में सरकारी महकमे के आला अफसर, एजेंट और व्यापारियों की एक खास जमात शामिल हो गई। अब हालात इतने बिगड़ चुके हैं कि गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले एक बड़े तबके तक अनाज पहुंच ही नहीं पाता है।

दूसरी तरफ गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले लोगों के नाम पर ठगी का बाजार तैयार हो गया है। एक सर्वे के मुताबिक सरकार के पास मौजूद आंकड़ों में जितने गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोग हैं, उनमें से लगभग 22 फीसद का कुछ अता-पता नहीं है। लेकिन उनके नाम पर राशन कार्ड बने हुए हैं और अनाज भी उठाया जा रहा है। हालांकि खाद्य मंत्रालय भी मानता है कि 60 लाख से ज्यादा राशन कार्ड गलत हैं। कई राज्यों में ऐसे मामले भी आए हैं जहां लोगों के राशन कार्ड को पीडीएस आफिसर अथवा उससे जुड़े दुकान के मालिक रख लेते हैं और अनाज का बाहर सप्लाई करते हैं। यहीं नहीं निरक्षरता की वजह से दुकानदार सरकारी दर को दरकिनार करते हुए अनाज की मनचाही रकम वसूलते हैं और कई जनवितरण प्रणाली के दुकानों पर तो घटिया गुणवत्ता वाले अनाज बेचे जाते हैं।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली का हाल जानकर हो जाएंगे बेहाल

राकेश आर्य/एसएनबी
नई दिल्ली, 25 अप्रैल।

देश में सार्वजनिक वितरण प्रणाली का ढांचा वाकई चरमरा गया है। कुल 4.89 लाख उचित दर की दुकानों का यह तंत्र गरीबों का अनाज सरकारी गोदाम से सीधे बाजार में बेचकर मोटी कमाई कर रहा है। यह खाद्यान्न पड़ोसी देशों में भी जा रहा है। सरकार द्वारा पूरे देश में एक बड़ी कंपनी से कराए गए सर्वेक्षण के बाद चौंकाने वाले नतीजे सामने आए। देशभर में सरकारी गोदाम से उठने वाले चावल का 39 प्रतिशत और गेहूं का 53.3 प्रतिशत सीधे बाजार में बिक जाता है। पूर्वोत्तर राज्यों में तो 100 प्रतिशत गेहूं और 97.7 प्रतिशत चावल बाजार में बेच दिया जाता है।

राज्यों में सार्वजनिक वितरण प्रणाली की स्थिति देखकर केंद्र सरकार ने हाल ही में कुछ राज्यों के कोटे में कटौती भी की है। अकेले पश्चिम बंगाल में गेहूं के आवंटन में 50 प्रतिशत और चावल में 82 प्रतिशत की कटौती की गई है। सरकार भी मानती है कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली का खाद्यान्न हर साल पड़ोसी देशों में चला जाता है। इस बार गेहूं के संकट का मुख्य कारण सरकारी खरीद का कम होना बताया जा रहा है। साथ ही बड़ी निजी कंपनियों द्वारा गेहूं बाजार से ही उठा लिया जाता है। इसके कारण सार्वजनिक वितरण प्रणाली पर भी फर्क पड़ा है। 2003-04 में 158.01 लाख टन गेहूं की सरकारी खरीद हुई थी, लेकिन 2007-08 में यह घट कर 111.28 लाख टन हो गई। बफर स्टाक को बनाए रखने के लिए सरकार को गेहूं आयात करना पड़ा था। हालांकि इस बार गेहूं की अच्छी खरीद की उम्मीद है क्योंकि अभी तक 150 लाख टन की खरीद हो चुकी है।

हरियाणा और पंजाब में तो खरीद ठीक हुई लेकिन गेहूं के सबसे बड़े उत्पादक राज्य उत्तर प्रदेश में खरीद न के बराबर हुई। हरियाणा में 33.08 लाख टन और पंजाब में 67.81 लाख टन गेहूं खरीदा गया जबकि उत्तर प्रदेश से सिर्फ 3.48 लाख टन गेहूं खरीदा गया। केंद्रीय पूल में पिछले साल 191.87 लाख टन खाद्यान्न था जिसमें 114.75 लाख टन गेहूं था। पिछले फरवरी माह में गेहूं का बफर स्टाक 77.12 लाख टन था जबकि होना चाहिए 82 लाख टन। यह स्थिति वर्ष 2005 से ही बनी हुई है। लेकिन इसके समाधान के लिए सरकारी खरीद को बढ़ावा देने के बजाए बफर स्टाक बनाए रखने के लिए आयात का सहारा सरकार लेती रही। सरकार के केंद्रीय पूल से विभिन्न योजनाओं के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली के लिए चावल और गेहूं का उठान खासकर गरीबों की योजनाओं के लिए बहुत कम हो गया है।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के चरमराने के पीछे कई कारण हैं। एक तो जो लोग इस धंधे में लगे हैं वह एक संगठित गिरोह के तौर पर काम कर रहे हैं जिससे सरकार का मकसद पूरा नहीं हो पा रहा है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली में जो खाद्यान्न उठ रहा है वह बीच में ही गायब हो जा रहा है। इस मामले में सरकार ने जब एक बड़ी कंपनी से पूरे देश में सर्वेक्षण कराया तो चौंकाने वाले नतीजे सामने आए। सरकारी गोदाम का गेहूं सीधे बाजार में बिकने चला जाता है। पूर्वोत्तर राज्यों में तो 100 प्रतिशत गेहूं और 97.7 प्रतिशत चावल बाजार में बिक जाता है। फर्जी राशन कार्ड और यूनिट के बल पर चलने वाले इस धंधे को बंद करने के लिए मुहिम भी शुरू की गई जिसके कारण दो साल में 11 राज्यों में 67 लाख जाली राशन कार्ड निरस्त किए गए।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से बंटने वाले खाद्यान्न का ब्योरा

वर्ष	आवंटन (लाख टन)			उठान (लाख टन)			उठान (%)		
	बीपीएल	एपीएल	एएवाई	बीपीएल	एपीएल	एएवाई	बीपीएल	एपीएल	एएवाई
2005-06	192.01	443.53	80.67	156.42	80.20	74.42	81.46	18.08	92.25
2006-07	180.04	302.82	93.69	142.39	84.68	86.61	79.08	96.00	92.45
2007-08	144.88	98.31	84.16	125.10	70.57	77.57	86.83	72.11	92.16

इंसाफ अब चौखट पर

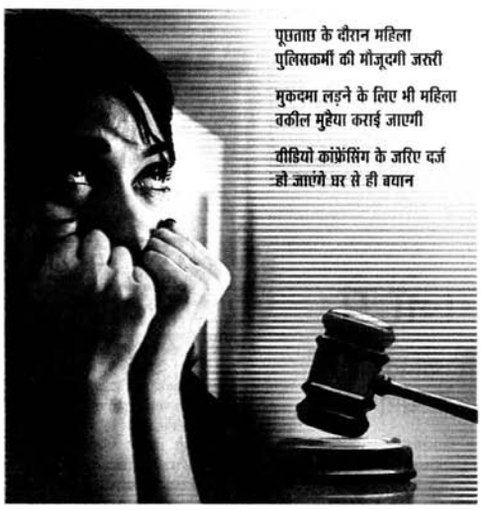

महिला जज करेंगी बलात्कार के मामलों की सुनवाई

अमर उजाला ब्यूरो

नई दिल्ली। बलात्कार की शिकार महिलाओं को न्याय दिलाने की प्रक्रिया आसान बनाने के लिए केंद्र सरकार ने मामले की सुनवाई पीड़िता के घर से ही कराए जाने का बंदोबस्त किया है। यानी पीड़िता को अब इंसाफ घर की चौखट पर ही मिल सकेगा। बृहस्पतिवार को कैबिनेट ने फैसला किया कि अब बलात्कार के मामलों की सुनवाई महिला जज करेंगी और पीड़िता के बयान उसके घर पर ही वीडियो कांफ्रेंसिग के जरिए दर्ज कराए जाएंगे। इस तरह के मामलों में पूछताछ के दौरान महिला पुलिसकर्मी की मौजूदगी जरूरी होगी और मुकदमा लड़ने के लिए भी महिला वकील मुहैया कराई जाएंगी। इंसाफ जल्द हो इसका ध्यान रखते हुए एक और अहम फैसला किया गया है कि पीड़िता के नाबालिग होने की स्थिति में सुनवाई तीन महीने के भीतर हर हाल में पूरी की जाएगी और इस तरह के मामले से जुड़े किसी गवाह के मुकरने पर उसके खिलाफ कार्रवाई होगी।

प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह की अध्यक्षता में हुई केंद्रीय मंत्रिमंडल की बैठक में दंड प्रक्रिया संहिता संशोधन विधेयक 2006 में अधिकारिक संशोधन को मंजूरी दे दी गई। इसमें गवाहों की सुरक्षा के लिए भी सरकार ने कानून में बदलाव का निर्णय किया है। दंड प्रक्रिया संहिता संशोधन विधेयक 2006 राज्यसभा में पेश किया गया था। गृहमंत्रालय की संसदीय समिति ने इसमें बदलाव की सिफारिश की थी। सरकार ने संसदीय समिति की सिफारिशों पर अपनी मुहर लगा दी है। बलात्कार के मामले की सुनवाई महिला जज से कराने की मांग काफी समय से उठती रही है। स्वयंसेवी संस्थाएं और कई अन्य संगठनों की दलील थी कि इससे पीड़ित महिला पुरुष जज के सामने अपनी बात नहीं रख पाती। इसके साथ ही पुरुष जज पीड़ित महिला के जज्बात उतनी शिद्दत से महसूस नहीं कर पाते, जितना कोई महिला कर सकती है। कई गंभीर अपराधों में गवाहों सुरक्षा के अभाव में बयान से पलटने की खबरें भी आई हैं। गृहमंत्रालय की संसदीय समिति ने 16 अगस्त, 2007 को सौंपी 128 वीं रिपोर्ट में बलात्कार के मामलों की सुनवाई महिला जज से कराने की सिफारिश की थी। सरकार ने इस सिफारिश को मंजूर करते हुए विधेयक में संशोधन लाने का फैसला किया है।

केंद्रीय मंत्रिमंडल की बैठक में आंतकवाद, नक्सली हिंसा और दूसरी चुनौतियों का मुकाबला करने के लिए पुलिस को चुस्त-दुरुस्त बनाने का भी फैसला किया गया। इसके लिए केंद्रीय मंत्रिमंडल ने सैद्धांतिक तौर पर राष्ट्रीय पुलिस विश्वविद्यालय को मंजूरी दे दी है। इसके तहत जनता में पुलिस की छवि को सुधारने के लिए शोध पाठ्यक्रम शुरू करने का भी रास्ता साफ हो गया। लोगों में खानपान के प्रति जागरूकता लाने के लिए सरकार ने वर्ष 2008-09 को खाद्य सुरक्षा एवं गुणवत्ता वर्ष घोषित किया है। इसके तहत सरकार बड़े बाजारों तक किसानों की सीधी पहुंच बनाने का भी प्रयास करेगी।

गवाहों की सुरक्षा के लिए भी सरकार करेगी मौजूदा कानून में बदलाव

पुलिस की छवि सुधारने के लिए बनेगा राष्ट्रीय पुलिस विश्वविद्यालय

प्रधानमंत्री ने की अल्पसंख्यकों के लिए शुरु कार्यक्रमों की समीक्षा

सरकार बड़े बाजारों तक किसानों की सीधी पहुंच के लिए प्रयास करेगी

ईएसआई कानून में भी संशोधन करने की केंद्र सरकार कर रही तैयारी

बलात्कार पीड़ित को अब न होगा बदनामी का डर

रेणुका चौधरी

प्रतिक्रिया

बलात्कार की घटनाओं के बढ़ते ग्राफ को देखते हुए इन मामलों की सुनवाई महिला जज से कराने की मांग बहुत पहले से उठती रही है। तमाम स्वयंसेवी संस्थाओं एवं अन्य कई संगठनों की दलील थी कि इससे बलात्कार की पीड़ित महिला या बच्ची किसी पुरुष जज के सामने अपनी आपबीती शर्म एवं लाज–लज्जा के चलते खुलकर नहीं बता पाती है। यह भी माना जाता है कि महिलाओं से अपराध मसलन, छेड़खानी एवं शोषण आदि की घटनाओं को जितना एक महिला जज अच्छी तरह से समझ सकती है और भांप सकती है, पुरुष जज शायद उतनी शिद्दत से नहीं महसूस कर पाते हैं।

बलात्कार जैसे गंभीर अपराधों में गवाहों की सुरक्षा के अभाव में बयान से पलटने की खबरें भी आती रहती हैं। यह सब न हो और पीड़ित को जल्द व उनके मनमाफिक सुनवाई एवं माकूल न्याय मिले, इसलिए इस नए कानून की जरूरत महसूस की गई। गृह मंत्रालय की संसदीय समिति ने 16 अगस्त, 2007 को सौंपी अपनी 128वीं रिपोर्ट में बलात्कार के मामलों की सुनवाई महिला न्यायाधीश से कराने की सिफारिश की थी। सरकार ने इस सिफारिश को मंजूर करते हुए विधेयक में संशोधन करने का फैसला किया है। निस्संदेह यह स्वागतयोग्य फैसला है। यह नई मुहिम उन बच्चियों के लिए संजीवनी की तरह साबित होगी जो अपनी आवाज को ऊपर तक पहुंचाना तो चाहती हैं, लेकिन सामाजिक लाज–लज्जा की वजह से न चाहते हुए भी अपनी आवाज दबाना ही मजबूरी बन जाती है। अपने ही घर में शोषण से ग्रस्त लड़की कभी भी पुरुष जज के समक्ष अपना बयान सहजता से नहीं दे पाती है, क्योंकि उसको खुद की एवं परिवार की बदनामी का डर रहता है।

इन सभी घटनाओं पर नजर रखते हुए बलात्कार की शिकार महिलाओं एवं बच्चियों को न्याय दिलाने की प्रक्रिया को आसान बनाने के लिए केंद्र सरकार ने मामलों की सुनवाई पीड़ित के घर से ही करवाए जाने का बंदोबस्त किया है। इससे साफ है कि अब पीड़िता को न्याय घर बैठे और जल्द ही मिल जाएगा। पीड़िता अपनी पूरी बात अपने घर के कमरे से ही अकेले बेखौफ और बेहिचक वीडियो–कांफ्रेंसिंग के जरिये दर्ज करा पाएगी। साथ ही, केंद्र सरकार ने अपने फैसले में यह भी निर्णय लिया है कि पीड़िता के बयान के वक्त कोई भी पुरुष पुलिसकर्मी वहां मौजूद नहीं होगा। सिर्फ महिला पुलिसकर्मी की मौजूदगी ही होगी। इसके साथ ही बलात्कार केस की पैरवी पुरुष वकील न करके महिला वकील ही करेगी। बलात्कार पीड़िता को न्याय जल्द मिले, इसे ध्यान में रखते हुए एक और अहम फैसला लिया गया है कि पीड़िता के नाबालिग होने की स्थिति में सुनवाई तीन महीने के भीतर हर हाल में पूरी कर ली जाएगी और इस तरह के मामले से जुड़े किसी भी गवाह के मुकरने पर उसके खिलाफ कार्रवाई होगी, ताकि गवाही से मुकरने की प्रवृत्ति पर रोक लग सके।

मेरी खुद कई वर्षों से मांग थी कि बलात्कार के मामलों की सुनवाई महिला न्यायाधीश ही करें। अब जबकि यह फैसला केंद्र सरकार ने कर दिया है तो इससे बलात्कार पीड़ितों का न्याय के प्रति और ज्यादा विश्वास बढ़ेगा और इससे बलात्कार पीड़ित महिलाओं में यह संदेश भी जाएगा कि उन्हें न तो बदनामी का डर और सुनवाई की जटिल प्रक्रिया का अब खौफ रहेगा। इससे वे अपनी कानूनी लड़ाई लड़ने के लिए स्वयं सामने आएंगी।

(सुश्री चौधरी महिला एवं बाल विकास मंत्री हैं)

प्रस्तुतिः रमेश ठाकुर

महिलाओं को 'अपने' ही बना रहे हवस का शिकार

सहारा न्यूज ब्यूरो
नई दिल्ली, 4 अप्रैल।

राजधानी में महिलाओं में असुरक्षा की भावना बढ़ती जा रही है। उनके साथ आए दिन यौन शोषण व प्रताड़ना की घटनाएं घटित हो रही हैं। हैरानी की बात यह है कि अपराधों को अंजाम देने वाले कोई और नहीं बल्कि अपने परिचित ही हैं। इस बात की पुष्टि पुलिस द्वारा दर्ज आंकड़ों से होती है।

राजधानी में वर्ष 2007 में दुष्कर्म के कुल 581 मामले दर्ज हुए। इनमें केवल 10 मामले ऐसे थे जिनमें आरोपित पीड़िताओं से अंजान थे जबकि 98 फीसद से अधिक में आरोपित पीड़िताओं के परिचित थे। इनमें से 62 पीड़िताओं के रिश्तेदार, 94 मित्र, 340 पड़ोसी, 17 साथ काम करने वाले, थे जबकि केवल 10 लोग पीड़िताओं के लिए अनजान थे। पुलिस के अनुसार गिरफ्तार किए गए आरोपितों में से 68 फीसद अनपढ़, 24 फीसद दसवीं तक जबकि केवल 1.9 फीसद स्नातक थे। इनमें 80 फीसद से अधिक आरोपित गरीब तबके के थे। दुष्कर्म की 64 फीसद वारदातों को घर में अंजाम दिया गया, पांच फीसद जेजे कॉलोनी में जबकि 31 फीसद अन्य जगहों पर। आंकड़ों के अनुसार सबसे अधिक दुष्कर्म की घटनाएं सुल्तानपुरी, गोकुलपुरी और नंदनगरी थाना क्षेत्रों में घटित होती हैं।

पुलिस के अनुसार महिलाओं को सुरक्षित महसूस करवाने के लिए प्रमुख बाजारों व अन्य जगहों पर एंटी ईव-टीजिंग कार्यक्रम चलाया जाता है। महिलाओं को जागरूक बनाने के लिए भी तरह-तरह के कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं। इसमें खासतौर पर परिवर्तन के तहत आयोजित कार्यक्रमों से काफी जागरूकता आई है। राष्ट्रीय महिला आयोग, दिल्ली महिला आयोग और गैर सरकारी संस्थाएं जो महिलाओं के लिए काम करती हैं।

बढ़ते अपराध खोल रहे पुलिस सुरक्षा की पोल

नई दिल्ली, 4 अप्रैल (एजेंसी)। राजधानी में महिलाएं कितनी सुरक्षित हैं इसकी पोल ताबड़तोड़ वारदातों से खुल रही है। तिलक नगर इलाके में गुरुवार को छात्रा के साथ हुए सामूहिक दुष्कर्म, सातवीं कक्षा की छात्रा का अपहरण और फिर उसके साथ चलती कार में दुष्कर्म किए जाने की घटना ने दिल्ली पुलिस की साख पर एक बार फिर बट्टा लगा दिया है।

तिलक नगर इलाके में गुरुवार को चलती कार में 12 वर्षीय छात्रा से सामूहिक बलात्कार की घटना ने राजधानी की महिलाओं को अपनी सुरक्षा के बारे में फिर से सोचने को मजबूर कर दिया है। इस घटना ने पुलिस की चौकसी पर भी सवाल खड़ा किया है। सड़क पर एक चलती हुई कार में लड़की के साथ बलात्कार होता है और कार को रास्ते में किसी पुलिसकर्मी द्वारा रोका नहीं जाता। एक तरफ दिल्ली पुलिस बेरिकेट लगाकर गहन चैकिंग का दावा करती है दूसरी ओर इस प्रकार की शर्मशार करने वाली घटनाएं पुलिस के दावों की पोल खोलती है।

उम्रकैद ही जरूरी

तेजाब हमले से पीड़ितों का दर्द सुप्रीम कोर्ट को महसूस हुआ और उसने केंद्र सरकार की खिंचाई करते हुए कहा, ऐसे अपराध के लिए अपराधी को कड़ी सजा का प्रावधान किया जाए। सुप्रीम कोर्ट ने नाबालिग लड़की लक्ष्मी के मामले की सुनवाई में यह बात कही। तेजाब फेंकने के खिलाफ सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले का देशभर की महिलाओं ने स्वागत किया।

दुमन भास्कर नेटवर्क. जयपुर
शहर की महिलाओं में यह मामला चर्चा का विषय रहा। उनके अनुसार तेजाब की शिकार लड़कियों की जिंदगी बर्बाद हो जाती है। शिक्षा, रोजगार और वैवाहिक जिंदगी पर खराब असर पड़ता है। इसलिए ऐसे आरोपियों को कड़ा दंड मिले ताकि वे अपराध करने से पहले हजार बार सोचें।

कठोर कानून हो

वकील और सामाजिक कार्यकर्ता सुप्रीम कोर्ट के आदेश से सहमत नजर आए। एडवोकेट डॉ. योगेश गुप्ता कहते हैं, तेजाब फेंकने को गंभीर अपराध माना जाए। वैसे भी महिलाओं पर अत्याचार के मामले बढ़े है। सुप्रीम कोर्ट का कहना सही है। एडवोकेट विजय सिंह पूनिया ने कहा, व्यक्ति की हत्या से उसे जिंदगी से छुटकारा मिल जाता है, जबकि तेजाब से पीड़ित व्यक्ति की जिंदगी बर्बाद हो जाती है। बेशक, यह हत्या से बड़ा अपराध है।

बने तेजाब कंट्रोल ऑर्डर कानून

शिवानी जडेजा कांड की पैरवी करने वाले एडवोकेट अमर सिंह कहते है, जान-बूझकर बदले की भावना से किसी की जिंदगी तबाह करने वाले मामलों में उम्रकैद होनी चाहिए। बिना सोचे-समझे भावावेश में उठाए गए कदम पर कड़ी सजा नहीं होनी चाहिए। सुप्रीम कोर्ट का कहना सही है। राज्य महिला आयोग की अध्यक्ष तारा भंडारी के मुताबिक पीड़ित पक्ष चाहे पुरुष हो या महिला, उसे राहत तभी मिलेगी, जब आरोपी को दंड की गंभीरता के अनुरूप सजा मिले। अमूमन तेजाब फेकने की शिकार महिलाएं ज्यादा होती हैं। लिहाजा, सजा सख्त होनी चाहिए। बांग्लादेश का 'तेजाब कंट्रोल ऑर्डर कानून' देश में भी बनाया जाए। इससे बाजार में आसानी से सभी को तेजाब नहीं मिलेगा। हाउसवाइफ सुनीता शर्मा ने कहा टीवी ने माहौल को ज्यादा खराब किया है। प्रेम-प्रसंग के मामले में लड़के तेजाब फेंककर बदसूरत करने की धमकी देते हैं। कॉलेज की स्टूडेंट्स सोनल जैन कहती हैं, ऐसिड फेंकने वालों के चेहरे पर भी तेजाब फेंका जाए, साथ ही उन्हें उम्रकैद हो।

तेजाब फैंकने की वजह

लड़की का शादी या प्रेम प्रस्ताव स्वीकार करने से मना करना, आपसी रंजिश और पारिवारिक विवाद।

फेक्ट फाइल

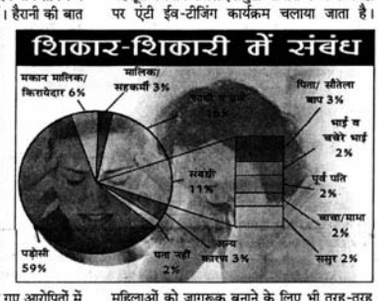

- सबसे पहले तेजाब फेंकने का मामला बांग्लादेश में 1967 मे आया। इस मामले मे लड़की की मा ने शादी की रजामंदी नहीं दी और लड़की के चाहने वाले ने लड़की पर तेजाब फेंक दिया।
- 2002 मे दक्षिण पंजाब में छह महीने में 50 महिलाओ पर तेजाब फेंका गया।
- तेजाब से पीड़ित लोगो मे महिलाओ का प्रतिशत 47, पुरुषो का 26 और बच्चो का 27 है।
- भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश मे तेजाब फेंकने के सबसे ज्यादा मामले सामने आए है। इन देशो में महिलाओ को जलाने के लिए केरोसिन और तेजाब का सबसे ज्यादा इस्तेमाल किया जाता है। ऐसे मामलो मे 50 से 60 परसेंट बढ़ोतरी जारी है।

केस 1 वैशालीनगर की शिवानी जडेजा का चर्चित कांड। करीब 10 साल पहले त्रिकोणीय प्रेम संबंधों के चलते भाभी ने देवर की प्रेमिका पर तेजाब डलवा दिया। सीबीआई की जांच में सच सामने आया। आरोपी को 7 साल की सजा हुई।

केस 2 करीब 8 साल पहले मकान के विवाद में सुरेंद्रपाल ने विरोधी पक्ष के लोगो पर तेजाब फेंका। इसमें महिला और उसका पति दोनों झुलस गए। मामला कोर्ट में विचाराधीन है।

केस 3 इसी महीने सिरोही की एक लड़की को उसके ससुराल वालों ने तेजाब पिलाने की कोशिश की। लड़की के विरोध के दौरान तेजाब उसके चेहरे पर गिरा। थाने मे मामला दर्ज हुआ। फिर राज्य महिला आयोग में आने पर पुलिस सक्रिय हुई। फिलहाल मामला कोर्ट में और लड़की मायके में है।

एक महिला से इतने आतंकित!

नुक्ता-ए-नज़र

साजिद रशीद

पिछले महीने जब 'मुसलिम महिला पर्सनल लॉ बोर्ड' की अध्यक्ष शाइस्ता अंबर ने लखनऊ में 'आदर्श निकाहनामा' जारी किया तो मुसलमानों की ठेकेदारी का दावा करने वाले बुरी तरह बौखला गए। उन्होंने पहले मुसलिम महिला पर्सनल लॉ बोर्ड की वैधता पर सवाल उठाए और फिर शाइस्ता अंबर की आस्था पर ही प्रश्नचिह्न लगा दिया। उन्होंने कहा कि ये एक महिला हैं और उन्हें इस्लाम धर्म के 'फिकहा' (कानून) की कोई जानकारी नहीं है। दूसरे शब्दों में, कोई मुसलमान महिला मुसलिम समुदाय का धार्मिक स्तर पर नेतृत्व कर ही नहीं सकती। खुद को तमाम मुसलमानों का नेतृत्व करने वाले, धार्मिक जमात कहलाने वाले ऑल इंडिया मुसलिम पर्सनल बोर्ड ने शाइस्ता अंबर के इस आदर्श निकाहनामे को रद्द करते हुए इसे उनका 'पब्लिसिटी स्टंट' कहा है।

सवाल है कि अगर शाइस्ता अंबर का मुसलिम महिला पर्सनल लॉ बोर्ड वैध नहीं है और ये प्रचार की भूखी हैं तो पर्सनल लॉ बोर्ड उनसे और उनके द्वारा जारी किए गए निकाहनामे से इतना आतंकित क्यों है कि उनके खिलाफ उर्दू अखबारों में खूब बयानबाजी की जा रही है!

जब शाइस्ता अंबर और उनके महिला पर्सनल लॉ बोर्ड की विश्वसनीयता आंकी जाएगी तो मुसलिम पर्सनल बोर्ड की भी विश्वसनीयता और वैधता पर गुफ्तगू जरूरी हो जाएगी। सबसे पहले यह देखना होगा कि यह महिला पर्सनल लॉ बोर्ड और शाइस्ता अंबर की क्या कारगुजारी है? शाइस्ता समाज सेविका हैं और उर्दू के एक अहम कवि अंबर बहराईची की पत्नी हैं। अंबर बहराईची को साहित्य अकादेमी पुरस्कार मिल चुका है। इसके अलावा ये संस्कृत के विद्वान हैं और संस्कृत काव्यशास्त्र पर उनकी उर्दू में तीन किताबें हैं। काबिले-गौर बात यह है कि शाइस्ता अंबर एक 'सेल्फ मेड' महिला हैं, यानी उनकी सामाजिक गतिविधियों का उनके पति से कोई सरोकार नहीं है और न ही वह उनके कामों में दखल देते हैं। शाइस्ता का अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व है।

शाइस्ता ने तीन साल पहले मुसलिम महिला पर्सनल बोर्ड की स्थापना उस समय की थी जब गुड़िया और इमराना जैसी पीड़ित महिलाओं को न्याय दिलाने की बात तो दूर, उन्हें प्रताड़ित करने वालों के पक्ष में दीन और इस्लाम की ठेकेदारी का दावा करने वाला आल इंडिया मुसलिम पर्सनल लॉ बोर्ड डट कर खड़ा हो गया। इमराना का मामला लोग भूले नहीं हैं, जिसमें उसके साथ बलात्कार करने वाले उसके ससुर की बेगुनाही साबित करने में पर्सनल लॉ बोर्ड मानवीय मूल्यों की सारी मर्यादाएं लांघ गया था। इसी बीच शिया समुदाय और बरेलवी आस्था के सुन्नी आल इंडिया मुसलिम पर्सनल लॉ बोर्ड से अलग हो गए थे और उन्होंने अपना अलग मुसलिम पसर्नल लॉ बोर्ड बना लिया था। मुसलिम महिलाओं पर इस्लाम की आड़ में किए जाने वाले अत्याचारों के खिलाफ इस्लाम की शिक्षाओं के अस्त्र से ही लड़ने के लिए शाइस्ता अंबर ने मुसलिम महिला पसर्नल लॉ बोर्ड की स्थापना की। यह मुसलिम समाज में एक ऐसा कदम था जिसकी कल्पना तक नहीं की जा सकती थी। उन्होंने सबसे पहले मुसलिम समाज की उस टेढ़ी इमारत को ठीक करने की पहल की, जिसकी बुनियाद में शादी और तलाक की एक भी ईंट ठीक से नहीं रखी गई है। एक ही समय में तीन तलाक देने को गलत ठहराने और पत्नी को तलाक हासिल करने का इस्लामी अधिकार देने वाले निकाहनामे को जारी करके शाइस्ता ने शुरुआत की और जैसाकि अपेक्षित था, मुल्लाओं को एक 'कमतर औरत की यह हरकत' बहुत नागवार गुजरी है। सबसे अधिक तिलमिला रहा है आल इंडिया पर्सनल लॉ बोर्ड, जिसने तीन वर्ष पहले मुसलमानों से यह वादा किया था कि वह एक ऐसा आदर्श निकाहनामा बना कर पेश करेगा जो तमाम आस्था के मुसलमानों के लिए स्वीकार्य होगा। सुना जाता है कि पंद्रह वर्ष पहले पर्सनल लॉ बोर्ड ने एक आदर्श निकाहनामा बनाया भी था, लेकिन कार्यकारिणी में उस पर सहमति नहीं बन पाई और उसे सर्दखाने में डाल दिया गया।

जब नशे में, गुस्से में, फोन पर और एसएमएस द्वारा तलाक दिए जाने की गैर-इस्लामी घटनाएं बढ़ती गईं और महिलाओं को मुसलिम समाज में वास्तव में पैर की जूती बना दिया गया तो शाइस्ता अंबर ने आल इंडिया मुसलिम पर्सनल लॉ बोर्ड के विभाजन के दिनों में महिला मुसलिम पसर्नल लॉ बोर्ड कायम कर दिया। यह बोर्ड सिर्फ एक कागजी संगठन नहीं है। यह तलाक पीड़ित महिलाओं को कानूनी सहायता और आर्थिक मदद भी करता है। जाहिर है कि रूढ़िवादी मुल्लाओं की नजर में शाइस्ता गैर-इस्लामी गतिविधियों में लिप्त है। यह तो था महिला मुसलिम पसर्नल लॉ बोर्ड और उसकी अध्यक्ष का छोटा-सा परिचय। अब जरा उस संगठन पर भी एक नजर डाल लें जिसे भारत सरकार भी अनजाने में या जान-बूझ कर आम मुसलमानों की प्रतिनिधि जमात समझती है।

ऑल इंडिया मुसलिम पसर्नल लॉ बोर्ड की स्थापना मुंबई में, 1972 में, उस समय की गई थी जब भारत सरकार एक दत्तक कानून (एडॉप्शन बिल) लाने जा रही थी, जिसके अनुसार भारत का कोई भी नागरिक अगर किसी को गोद लेता है तो उसकी संपत्ति में उस दत्तक का भी हिस्सा होगा। जबकि इस्लाम में दत्तक को पिता की संपत्ति में हिस्सा नहीं मिलता है। इस कानून का विरोध करने के लिए आल इंडिया पर्सनल लॉ बोर्ड अस्तित्व में आया था। और 1985 में जब शाहबानो मामले में सुप्रीम कोर्ट ने उसके पति को धारा 125 के अनुसार शाहबानो को तब तक प्रति माह 295 रुपए गुजारा भत्ता देने का आदेश दिया जब तक वह दूसरी शादी नहीं कर लेती या मर नहीं जाती तो इस आदेश के खिलाफ पर्सनल लॉ बोर्ड ने पूरे देश में उग्र आंदोलन छेड़ दिया। तत्कालीन प्रधानमंत्री ने सिर झुका कर लोकसभा में सुप्रीम कोर्ट के निर्णय को बदलवा दिया। आल इंडिया पर्सनल लॉ बोर्ड इसे अपनी ऐतिहासिक जीत मानता है। यानी एक वृद्ध महिला को गुजारे के लिए दिए जाने वाले 295 रुपए को उससे छीन लेने को वह अपने धर्म और अपने संगठन की सबसे बड़ी जीत समझता है।

आल इंडिया पर्सनल लॉ बोर्ड के बारे में आम धारणा है कि यह मुसलमानों का प्रतिनिधि संगठन है। आपको ही नहीं, आम मुसलमानों को भी यह जान कर शायद हैरत होगी कि पर्सनल लॉ बोर्ड पंजीकृत संगठन नहीं है। देश के पंद्रह करोड़ मुसलमानों के प्रतिनिधित्व का दावा करने वाले इस संगठन का कोई खुला चुनाव नहीं होता है। इसके सदस्यों और पदाधिकारियों के चयन की प्रक्रिया क्या है? यह कोई नहीं जानता। हां, यह पता है कि जब जरूरत महसूस होती है कुछ उलेमा आपस में बैठ कर कुछ लोगों को कार्यकारिणी के लिए मनोनीत कर लेते हैं। बोर्ड की जनरल कौंसिल के सदस्यों की संख्या 201 है। 1972 के पहले सम्मेलन में उपस्थित सभी उलेमा को बोर्ड के संस्थापक सदस्य का दर्जा हासिल है। 201 सदस्यों में 100 सदस्य स्थायी हैं। बोर्ड के 41 सदस्यों की कार्यकारिणी में केवल एक महिला है। अफसोसनाक बात तो यह है कि इस एकमात्र महिला सदस्य ने इमराना प्रकरण में पंचायत के उस निर्णय का समर्थन किया था, जिसमें ससुर द्वारा बलात्कार किए जाने के बाद उससे कहा गया था कि अब उसका पति उसके लिए बेटे के समान हो गया है इसलिए उसके पति के साथ उसका निकाह टूट गया है। बोर्ड की एक महिला द्वारा एक पीड़ित और असहाय महिला के खिलाफ दिए गए अमानवीय निर्णय का समर्थन, मेरी निगाह में सती प्रथा का समर्थन करने से कम घृणित नहीं है।

पर्सनल लॉ बोर्ड का सम्मेलन बुलाने की कोई समय सीमा नहीं है। अब प्रश्न यह उठता है कि जो बोर्ड तैंतीस बरसों में तलाक की प्रक्रिया पर सहमत न हो सका हो, जिस बोर्ड को पंजीकृत न कराया गया हो, जो बीस वर्ष पहले एक आदर्श निकाहनामा पेश करने का अपना वादा आज तक पूरा न कर सका हो और जिसके कई विभाजन हो चुके हों, ऐसे संगठन को मुसलिम महिलाओं के धार्मिक अधिकारों की रक्षा करने वाले मुसलिम महिला पर्सनल लॉ बोर्ड की वैधता और उसकी अध्यक्ष पर सवाल उठाने का क्या हक है!

भविष्य के आईने में शहरीकरण

वक्त बदला और इसके साथ ही बदली दुनिया की तस्वीर। गांवों और कस्बों से निकलकर शहरों की ओर बढ़ती आबादी लगातार बढ़ रही है। गांव अब शहरों में बदलने लगे हैं। आज से लगभग 50 साल बाद क्या होगा देश और दुनिया का रूप? इसी पर पेश है एक रिपोर्ट-

ज्योत्स्ना पंत, भोपाल

संयुक्त राष्ट्र की एक ताजा रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2050 तक 6.4 अरब आबादी शहरों में बसी होगी। वर्तमान में शहरी आबादी कुल 3.4 अरब है। यानी कि आने वाले 40 सालों में दुनिया की शहरी आबादी लगभग दोगुना हो जाएगी। एशिया और चीन शहरीकरण के मामले में सबसे आगे होंगे।

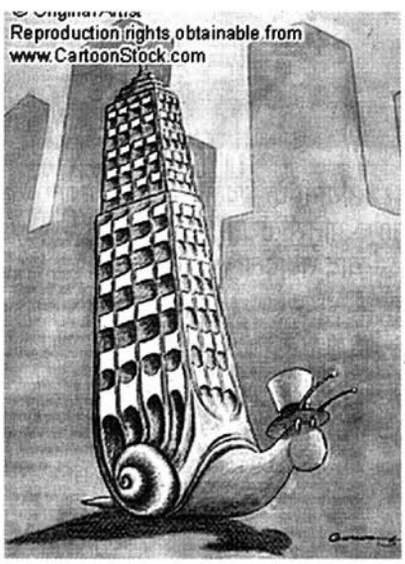

कैसा रहेगा शहरीकरण का भविष्य

- दुनिया की लगभग आधी आबादी शहरों में बसी होगी। हर 100 में से नौवां शहर मेगासिटी होगा।
- 2050 तक तकरीबन 70 प्रतिशत शहरीकरण हो चुका होगा। मध्यम व छोटे शहरों में विकास तेजी से होगा।
- इतने ही समय में शहरों में बसी जनता का प्रतिशत 86 प्रतिशत तक बढ़ जाएगा। चीन की बात करें तो यहां के हर 10 में से सात नागरिक शहरों में बसे होंगे।
- वर्ष 2050 तक ग्रामीण इलाकों की संख्या में 18 प्रतिशत तक की कमी आ जाएगी।

ये है भारत की स्थिति

देश की कुल जनसंख्या का महज 30 प्रतिशत हिस्सा ही शहरों में रहता है। 2030 तक यह आंकड़ा 40.7 प्रतिशत तक पहुंचने की संभावना है।

यानी शहरों में बसी जनता की आबादी 59 करोड़ के आसपास होगी। भारत के पॉलिसी मेकर्स ने ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर बढ़ाते हुए हर वित्तीय वर्ष में गांव के एक परिवार से एक व्यक्ति को 100 दिन गारंटी रोजगार देने की योजना चलाई हुई है।

जरूरी है मूलभूत जरूरतों पर ध्यान देना

गांवों के शहरों में बदल जाने भर से सारी परेशानियां हल नहीं हो जाएंगी। पानी, स्वच्छता, खान-पान आदि पर ध्यान देना भी जरूरी है। विशेषज्ञ कहते हैं कि सरकार को इस बात का विशेष ध्यान रखना होगा कि शहरीकरण के साथ-साथ लोगों के जीवनस्तर में बदलाव आए। विशेषकर गांवों में सैनिटेशन की सुविधाएं बढ़ाना होगी। आज भी सही सैनिटेशन न होने से बीमारियों का ग्राफ बढ़ने के साथ समस्याएं भी बढ़ रही हैं।

इस रिपोर्ट में आने वाले समय में शहरीकरण का विस्तार तो बताया गया है, लेकिन साथ ही यह भी कहा है कि शहरों में रहने वाले गरीबों की स्थिति ग्रामीण इलाकों में बसे गरीबों से भी बदतर होगी। इसको ध्यान में रखते हुए सरकार को आगे काम करना चाहिए। शहरीकरण के साथ लोगों की मूलभूत जरूरतों को प्राथमिकता दिए जाने की जरूरत है।

वर्तमान स्थिति

1. विकासशील देशों का फर्टिलिटी रेट लगातार घट रहा है। इसके कारण आने वाले वर्षों में जनसंख्या का 8.3 अरब तक पहुंचना जरा मुश्किल है।
2. 35 साल पहले तक दुनिया की एक तिहाई आबादी ही शहरों में बसी थी। हर साल विकासशील देशों में 1.5 लाख लोग शहरी जनसंख्या में बढ़ रहे हैं।
3. ग्रेटर टोक्यो में अभी 2.7 करोड़, साओ पाउलो और ब्राजील में 1.64 करोड़ जबकि मुंबई में 1.5 करोड़ की आबादी है।
5. 1970 से 1990 के बीच अकेले लैटिन अमेरिका में शहरी गरीबों की संख्या 44 से बढ़कर 11.5 करोड़ तक पहुंच गई।
5. गत 20 वर्षों में पूरे विश्व में ऊर्जा का उपभोग 50 प्रतिशत तक बढ़ा है।
6. बैंकॉक में प्रतिदिन 300-400 वाहन ट्रैफिक जाम करते हैं। अमेरिका में वाहनों का उपयोग करने वालों की संख्या 40 प्रतिशत तक बढ़ गई है।
7. तकरीबन एक अरब जनता मछली खाकर अपनी प्रोटीन की जरूरत को पूरा करती है।
8. पिछले 50 सालों में नदियों और तालाबों से स्वच्छ पानी की मात्रा में लगातार गिरावट आई है। 1994 में 22 करोड़ जनता को पीने के लिए साफ पानी उपलब्ध नहीं था। विकासशील देशों में 90 प्रतिशत सीवेज को अच्छी तरह से ट्रीट नहीं किया जाता।

फ्यूचर ट्रेंड 2050

1. दुनिया की कुल आबादी वर्तमान से दोगुना होकर 8.5 अरब तक पहुंच जाएगी। अफ्रीका की कुल आबादी दोगुना हो जाएगी। वहीं एशिया की आबादी में 40 प्रतिशत की वृद्धि होगी।
2. दुनिया की कुल दो तिहाई आबादी शहरों में बसी होगी।
3. 2015 में दुनिया में 33 मेगासिटीज होंगी, जिनकी जनसंख्या 80 लाख होगी। वहीं 500 शहरों में से एक शहर की जनसंख्या 10 लाख के करीब होगी।
4. आने वाले दशकों में दुनिया के सबसे गरीब लोग भी शहरों में बसे होंगे, लेकिन इनकी स्थिति गांवों में रहने वाले गरीबों से भी बदतर होगी।
5. 2020 तक ऊर्जा का उपभोग 50 प्रतिशत से बढ़कर 100 प्रतिशत तक हो जाएगा। ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन 45 से बढ़कर 90 प्रतिशत हो जाएगा।
6. 2010 तक मोटर वाहनों की संख्या बढ़कर 80 करोड़ के आंकड़े को भी पार कर जाएगी। इससे वायु प्रदूषण बढ़ेगा।
7. जनसंख्या बढ़ने के साथ ही दुनिया का खाद्यान्न उत्पादन भी बढ़ जाएगा, इसके बावजूद भूखमरी की समस्या को हल नहीं किया जा सकेगा। 2010 तक अफ्रीका में कुपोषण के शिकार लोगों की संख्या 30 करोड़ तक पहुंच जाएगी।
8. 2050 तक 2.4 अरब जनता को पानी से संबंधित समस्याओं से जूझना पड़ेगा। यह विश्व की अनुमानित जनसंख्या का 1/5 भाग है।

घर का सपना

रेशमा भारती

मुद्दा

शहरी गरीबों के लिए विस्थापन की समस्या कोई नई नहीं है। झोपड़पट्टियों को उजाड़ने और विस्थापितों के पुनर्वास की असंतोषजनक व्यवस्था से पिछले कुछ समय में विभिन्न शहरों में तनाव और विरोध उभरता रहा है। शायद यही वजह है कि दबाव में शहरी नियोजन में सुधार की आवश्यकता महसूस की गई है। इस संदर्भ में कुछ शहरों में स्लमवासियों को सस्ते मकान उपलब्ध कराने संबंधी घोषणाएं भी सामने आई हैं। ऐसे मकान मुहैया कराने से अगर अस्थायी झुग्गी बस्तियों में रहने वालों को स्थायी आवास प्राप्त होता हो तो यह कदम एक सार्थक पहल साबित हो सकता है। मगर कई बार देखने में आया है कि निम्न आय वर्ग के नाम पर बनने वाले मकानों का उपभोग आखिरकार मध्यम वर्ग ही करता है। आमतौर पर ऐसा मकान के खर्चे, बिचौलियों के दखल और योजना के क्रियान्वयन में ईमानदारी के अभाव के कारण होता है।

सरकार ने गरीबों के लिए जो सस्ते घर देने की योजना की घोषणा की है, वह वास्तव में तभी लाभप्रद होगी जब यह सुनिश्चित हो कि घर वास्तव में पर्याप्त, सस्ते और स्लमवासियों की जरूरतों के अनुरूप हैं। ऐसे आवास का प्रबंध करते हुए सरकार कितना आर्थिक योगदान दे रही है या फिर इसे निजी क्षेत्र के हाथों में सौंपने और मुनाफा कमाने का खेल चल रहा है, यह इस बात को सुनिश्चित करेगा कि ये घर वास्तव में गरीबों को कितना लाभ पहुंचाएंगे।

शहरी गरीबों के विस्थापन और असंतोषजनक पुनर्वास के साथ उनके रोजगार की समस्या जुड़ी है। पुनर्वास के नाम पर जब-जब इन्हें मुख्य शहर से दूर किया जाता रहा, तब-तब असंतोष पनपा। कार्यक्षेत्र से दूर हो जाने पर इनकी आजीविका पर प्रतिकूल असर पड़ा। दूरदराज के इलाकों में काम करने आने के कारण इन्हें किराए पर ही काफी रकम खर्च करनी पड़ती है। यही वजह है कि लोग इधर-उधर अपना डेरा बसा लेते हैं। एक झुग्गी बस्ती के उजड़ जाने से उसमें अपना काम-धंधा चला रहे कई स्वरोजगार वाले मेहनतकश गरीब अपनी आजीविका से हाथ धो बैठते हैं।

वैकल्पिक घरों का स्वरूप स्लमवासियों की जरूरतों से कितना मेल खाएगा, यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। झुग्गी बस्तियों का फैलाव और परस्पर निर्भर सामुदायिक जीवन वहां रहने वाले गरीबों की रोजी-रोटी में सहायक है। छोटे-छोटे फ्लैटों की बहुमंजिला इमारतों में सिमट कर उनके काम-धंधे कितना चल पाएंगे, यह एक अहम सवाल है। उदाहरण के लिए, मोटर मैकेनिक या एक सब्जी वाला अपनी आजीविका का स्रोत स्लमबस्ती के विस्तार और सामुदायिक जीवन में रचा-बसा कर रखता है। कुछ समय पूर्व मुंबई की धारावी स्लम बस्ती के लोगों के पुनर्वास के संदर्भ में यह मुद्दा खासतौर से उभरा था कि इस तरह के वैकल्पिक आवास वास्तव में कितने उपयोगी हैं। वहां स्लम के स्थान पर फ्लैट हो जाने से काफी लोगों के रोजगार पर प्रतिकूल असर पड़ा।

पुनर्वास स्थल की गुणवत्ता भी अनेक बार असंतोष का कारण बनी है। वहां बिजली-पानी जैसी बुनियादी सुविधाओं के अभाव की शिकायतें सामने आती रही हैं। मलिन बस्तियों में रहने वालों के लिए मकानों का प्रबंध करते हुए कुछ बातों का ध्यान रखना जरूरी है। इन गरीबों के विभिन्न कौशलों पर ही शहर टिके हैं। जिन फ्लैटों-कोठियों, दुकानों-फैक्ट्रियों में ये मेहनत करते हैं, उनके आसपास इनका बस जाना स्वाभाविक है।

हाल ही में पटना और उसके आसपास के कुछ इलाकों में सभी स्लमवासियों के लिए दो कमरे, एक किचेन, एक स्नानघर, एक शौचालय और एक बालकनी वाले सस्ते फ्लैट उपलब्ध कराने की घोषणा हुई है और इसके लिए विस्तृत सर्वे का काम भी जोर-शोर से जारी है। जवाहरलाल नेहरू शहरी नवीनीकरण योजना के तहत इस योजना के लिए सरकार ने पैसे जुटाए हैं। ऐसा मकान लेने वालों को उसकी कीमत का लगभग दस प्रतिशत और वह भी किस्तों में ही देना पड़ेगा। इस योजना में एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जो बहुत गरीब हैं और न्यूनतम रकम का भी इंतजाम नहीं कर सकते, वे इस मकान की कीमत अपना श्रम देकर चुका सकते हैं। इसकी एक और खासियत यह है कि इसके लिए पहचान पत्र घर की महिला के नाम पर जारी किए जा रहे हैं।

दिल्ली में इस योजना के तहत पचपन हजार सस्ते घर बनाने की योजना को सरकार की स्वीकृति मिल चुकी है। लेकिन सभी शहरी गरीबों को छोटे-छोटे मकानों में ठूंस देना भी अव्यवहारिक होगा। इसलिए गरीबों की आवास संबंधी किसी भी योजना को इतना लचीला अवश्य होना चाहिए कि इससे प्रभावित लोगों की जरूरतों का पर्याप्त ध्यान रखा जा सके। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि दिल्ली जैसे महानगर में देश भर से रोजी-रोटी की तलाश में गरीब लोग अस्थायी तौर पर आते हैं। उन्हें यहां स्थायी घर की जरूरत नहीं है, लेकिन बेघर होकर रहना उनकी मजबूरी नहीं होना चाहिए। इसलिए देश के विषमताग्रस्त समाज में झोपड़पट्टियों या झुग्गी बस्ती के अस्तित्व को अचानक खत्म करना लोकतंत्र के विरुद्ध ही माना जाएगा।

कृषि में स्त्री और उसके अधिकार

लैंगिक भेदभाव व कृषि के बदलते अंतरराष्ट्रीय स्वरूप के मद्देनजर राष्ट्रीय महिला आयोग ने कृषि गत नीति निर्माताओं का ध्यान कृषि क्षेत्र से जुड़ी महिलाओं की जरूरतों व समस्याओं की ओर आकृष्ट करने के मकसद से 'नेशनल पॉलिसी फॉर वीमेन इन एग्रीकल्चर' नामक ड्राफ्ट तैयार किया है। आयोग ने ड्राफ्ट तैयार करने की पहल इसलिए की, क्योंकि बीते वर्ष संसद में पेश की गई राष्ट्रीय किसान नीति में उसके सुझावों को खास तरजीह नहीं दी गई।

अलका आर्य

> *कृषि का स्त्रीकरण हो रहा है। 1991 व 2001 जनगणना के आंकड़े बताते है कि इस बीते दशक में कृषि क्षेत्र में महिलाओं की संख्या में वृद्धि हुई है।कृषि क्षेत्र कार्य बल में महिलाओं की कुल भागीदारी 40 प्रतिशत है।*

अंग्रेजी में फार्मर या हिंदी शब्द में किसान शब्द का उच्चारण करने पर लोगों की सोच में पुरुष का चेहरा ही उभरता है। इन शब्दों की रचना करने वालों से लेकर नीति निर्माताओं तक ने कृषि क्षेत्र से जुड़ी महिलाओं के योगदान को कमतर आंका है। किसान/कृषि संबंधी समस्याओं पर चर्चा का फोकस भी अक्सर पुरुष किसान पर रहता है। इस सोच का खामियाजा कृषि व इससे जुड़े क्षेत्रों (पशुपालन, मत्स्य पालन, वन व नर्सरी आदि) से जुड़ी महिलाओं को भुगतना पड़ता है। जबकि सच्चाई यह है कि आज कृषि का स्त्रीकरण हो रहा है। 1991 व 2001 जनगणना के आंकड़े बताते है कि इस बीते दशक में कृषि क्षेत्र में महिलाओं की संख्या में वृद्धि हुई है। कृषि क्षेत्र कार्य बल में महिलाओं की कुल भागीदारी 40 प्रतिशत है। आज की तारीख में कुल पुरुष कामगारों में 53 प्रतिशत पुरुष व महिला कामगारों में 75 प्रतिशत महिलाएं कृषि क्षेत्र में हैं। ग्रामीण महिला कामगारों में 85 प्रतिशत महिलाएं कृषि से जुड़े विभिन्न काम करती है। कृषि क्षेत्र में महिलाएं बीज संजोने से लेकर खेत मैनेजर तक की भूमिका निभाती हैं। महिलाएं कृषि क्षेत्र की धुरी हैं। लेकिन उनके इस महत्वपूर्ण भूमिका को कभी भी स्वीकार नहीं किया गया। संभवतः इसी कारण कृषि संपत्ति में महिलाओं का हक न के बराबर है और पुरुषों की तुलना में अधिक सक्रिय होने के बावजूद उन्हें बहुत कम मजदूरी मिलती है। ऐसे लैंगिक भेदभाव व कृषि के बदलते अंतरराष्ट्रीय स्वरूप के मद्देनजर राष्ट्रीय महिला आयोग ने कृषि गत नीति निर्माताओं का ध्यान कृषि क्षेत्र से जुड़ी महिलाओं की जरूरतों व समस्याओं की ओर आकृष्ट करने के मकसद से 'नेशनल पॉलिसी फॉर वीमेन इन एग्रीकल्चर' नामक ड्राफ्ट तैयार किया है। इस ड्राफ्ट में कृषि क्षेत्र से जुड़ी लाखों महिलाओं का संपत्ति में हक, पति-पत्नी दोनों के नाम पट्टा, पुरुषों के बराबर दर्जा, बराबर मजदूरी, महिला मैत्री तकनीकी औजार विकसित करने, प्राकृतिक संसाधनों में हक दिलाने व विधवा, एकल महिला को अधिकार देने पर जोर दिया गया हैं।

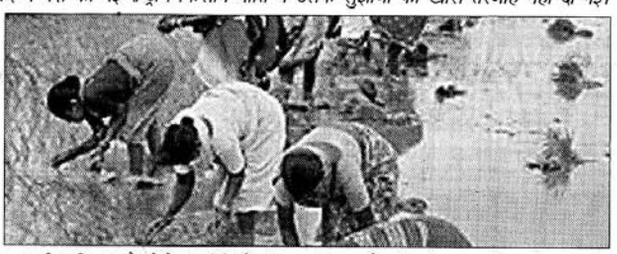

राष्ट्रीय महिला आयोग ने नेशनल पॉलिसी फॉर वीमेन इन एग्रीकल्चर का ड्राफ्ट तैयार करने की पहल इसलिए की, क्योंकि आयोग ने पाया कि बीते वर्ष (अक्टूबर-नवंबर 2007) संसद में पेश की गई राष्ट्रीय किसान नीति में उसके द्वारा सुझाए गए लैंगिक बिंदुओं को खास तरजीह नहीं दी गई। स्वामीनाथन आयोग द्वारा तैयार किए गए इस नीतिगत दस्तावेज में महिला किसानों व कृषि क्षेत्र से जुड़े कामगारों के महत्वपूर्ण सरोकारों को हाशिए पर रख दिया गया है। लिहाजा राष्ट्रीय महिला आयोग ने आज के दौर में कृषि के विभिन्न आयामों के मद्देनजर यह पहल की। इस राष्ट्रीय नीति में विशेष जोर कृषि संपत्ति में साझा भूमि पट्टा पर दिया गया है। नीति में पति-पत्नी दोनों के नाम कृषि जमीन करने व सरकारी रिकॉर्ड में दर्ज कराने की पुरजोर वकालत की गई है। साझा पट्टा दस्तावेजों पर दोनों के हस्ताक्षर व सहमति भी दर्ज होनी चाहिए।

गौरतलब है कि राष्ट्रीय महिला आयोग ने साझा पट्टा वाले मुद्दे को जय किसान नामक राष्ट्रीय किसान नीति के प्रारूप में शामिल करने का सुझाव स्वामीनाथन आयोग को भेजा था। राष्ट्रीय किसान नीति में साझा पट्टा पर तेजी से काम करने की अनुशंसा तो सरकार से की गई है। जबकि इसे लागू करवाने की राह में आने वाली रुकावटों को दूर करने के लिए ठोस कदम उठाने की बात नहीं की गई है। पूर्व में हुए पट्टों को भी साझा पट्टा में बदलने के प्रावधान पर विचार करना, पट्टे पर महिलाओं के हस्ताक्षर को अनिवार्य बनाना, साझा पट्टा का प्रारूप इस तरह होना चाहिए कि पैतृक संपत्ति में बेटी के अधिकार को भी बराबर संरक्षण मिले व शादी टूटने की स्थिति में औरत का उस पट्टे तक स्वतंत्र पहुंच व नियंत्रण बना रहे जैसे महत्वपूर्ण बिंदुओं पर नीति निर्मताओं का ध्यान इस राष्ट्रीय महिला नीति में खींचा गया है। इस महिला नीति में इस कड़वी सच्चाई पर फोकस है कि कृषि संपत्ति महिलाओं के नाम नही होती है, लिहाजा संस्थागत ऋण को जमीन पट्टे की शर्त से अलग किया जाना जरूरी है। महिलाओं को दिए जाने वाले ऋण के लिए जमानत का प्रावधान हटा देना चाहिए। राष्ट्रीय किसान नीति में भोजन व कृषि में महिलाओं के विशेष ज्ञान कला को स्वीकार नही किया गया है। यह बौद्धिक संपदा पर पैतृक विचारधारा के प्रभाव को दर्शाता है। यह पूर्वाग्रह ख्यातिप्राप्त कृषि वैज्ञानिक व राष्ट्रीय किसान आयोग के अध्यक्ष एमएस स्वामीनाथन की अध्यक्षता में तैयार की गई राष्ट्रीय किसान नीति मे झलकता है, ऐसा राष्ट्रीय महिला आयोग के ड्राफ्ट में कहा गया है। जबकि राष्ट्रीय महिला आयोग द्वारा तैयार किए गए ड्राफ्ट के अनुसार कृषि विकास में महिलाओं का बीज व जैव विविधता संबंधी पारंपरिक ज्ञान काफी फायदेमंद साबित हो सकता है। उनके इस ज्ञान को स्वीकार किया जाना चाहिए और कृषि अनुसंधान में उसका इस्तेमाल भी होना चाहिए।

बेशक राष्ट्रीय महिला आयोग ने कृषि क्षेत्र से जुड़ी महिलाओं के लिए राष्ट्रीय नीति तैयार करने की पहल की, लेकिन अहम सवाल यह है कि सरकार इस नीति के अंतिम ड्राफ्ट पर क्या प्रतिक्रिया जाहिर करती है? वैसे कृषि संपत्ति व कृषि संबंधी अन्य क्षेत्रों में पुरुषों के अधिकारों को चुनौती देने वाली व महिलाओं को उनके देय हक दिलाने की पुरजोर सिफारिश करने वाली इस राष्ट्रीय नीति से देश के कमजोर, दलित वर्गों की महिलाएं विशेष तौर पर सशक्त होंगी - क्योंकि ऐसे तबकों की ही महिलाएं कृषि क्षेत्र में अधिक संख्या में हैं। अपने देश में पुरुषप्रधान कृषि वाले परिदृश्य की मानसिकता को बदलना इतना आसान काम नही है। कृषि विभाग की ब्यूरोक्रेसी महिलाओं के प्रति संवेदनशील नहीं है। उनका काम पूरे कृषि समुदाय को अपनी सेवाएं प्रदान करना है लेकिन वे पुरुषों की ओर अधिक गौर फरमाते है और ऐसे में नजरअंदाज होती हैं महिलाएं। कृषिगत व्यवस्था महिलाओं की समस्याओं को समझने में रुचि नही लेता। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो इसका एक कारण यह है कि कृषि की शिक्षण, अनुसंधान व अन्य शाखाओं के प्रमुख पुरुष ही रहे हैं व पारंपरिक सोच के तहत किसान सबसे अभिप्राय पुरुष ही लिया जाता है।

डा. एमएस स्वामीनाथन की पत्नी मीना स्वामीनाथन ने कृषि व ग्रामीण जीविकोपार्जन में लैंगिक मुद्दों पर आधारित 18 घंटों का एक पाठ्यक्रम 1999 में तैयार किया। इसके पीछे मकसद कृषि विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों को कृषि व ग्रामीण ढांचें को 'स्त्री के परिप्रेक्ष्य से समझना व संवेदनशील बनाना है लेकिन इतने साल बीत जाने के बाद भी कोई अनुकूल उत्तर कही से नही मिला है। केरल, कर्नाटक, आंध्रप्रदेश के कृषि विश्वविद्यालयों में आज अधिक लड़कियां कृषि की पढ़ाई कर रही हैं लेकिन जब भी कृषि में महिलाओं की समस्याओं पर चर्चा होती है तो उसे बेचारी की मुद्रा में पेश कर स्वयं सहायता समूह से जुड़ने की सलाह दी जाती है, जबकि उसे असली अर्थों में सशक्त करने में कृषि संपत्ति में अधिकार, जमीन का साझा पट्टा, संस्थागत ऋण पर मानसिक सोच बदलने की जरूरत है।

(लेखिका स्त्री मामलों की विशेषज्ञ हैं।)

जागोरी फिल्मोत्सव : क्रोमोज़ोम – जिसके माध्यम से औरतों की रोजमर्रा की ज़िन्दगी में जेंडर की भूमिका की मौजूदगी पर एक सुक्ष्म नज़र डालने की कोशिश की गई थी।

निशुल्क प्रतियों के लिए संपर्क करें -
जागोरी बी-114 शिवालिक मालविया नगर, नई दिल्ली-110017, फ़ोनः 26691219, 26691220
email: resource@jagori.org/jagori@jagori.org